आयुर्वेद परिषद् का कार्य्यकर्तृमण्डल

प्रधान	श्री वैद्य धर्म्मदत्त जी
मन्त्री	ब्र० रघुनाथ १४ शा
उपमन्त्री	ब्र० लेखराज १३ शा
कार्य्यकारिणीसदस्य	ब्र० ब्रह्मदत्त १४ शा
	ब्र० अनन्तानन्द १४ शा
	ब्र० पुरुषोत्तमदेव १२ शा
	ब्र० ब्रह्मदत्त १३ शा
	ब्र० विजयपाल १२ शा
	ब्र० रघुनाथ १२ शा
	ब्र० वासुदेव ११ शा

विषय-सूची

विषय - सूची (आगत)

विषय-सूची (आगत)

विषय सूची (आगत)



श्रद्धानन्द सेवाश्रम के
संस्थापक — श्री ताम्जे

उसी दिवङ्गत पुण्यात्मा

की

पवित्र स्मृति को

मङ्गलाचरण

नमस्तस्मै कुर्म्मः सकलभिषजामादिगुरवे,
दुरूहायुर्वेदं सुनिपुणतया सम्प्रथयते।
विपश्चिद्वर्य्येषु प्रथितयशसेऽनल्पमतये,
समार्त्तानां त्रात्रे चरकमुनये सादरमरम्॥

वे.

(अहमद व अमोदरा)

सिर पर हैट —

सुनहली कमानी का चश्मा —

कॉलर —

नैक-टाई —

रेशमी कोट —

रेशमी पतलून —

पैरों में चमकदार, चर्र-मर्र करते बूट —

बिल्कुल साहबी वेश।

... ...

पलित केश,

चेहरे पर झुर्रियाँ,

प्रत्येक अंग — एक लम्बी अजीब कहानी —

शरीर बिल्कुल बूढ़ा।

पर,

उमंगे जवान,

जवान को लजा देने वाला अदम्य उत्साह,

सदा नया जोश,

जल्दी- तेजी से उठते हुए कदम।

... ...

मुख पर साद़गी गम्भीरता—

—पर,

फूटी सी पड़ती मीठी मुस्कान,

और,

दिल में जलती हुई एक आग—

सेवा- सेवा-सेवा...

.. ..

हाँ यही हैं वे—

दुःखी के मरहम—

कलियुग के गोपाल—

डा॰ गोपाल रामचन्द्र ताम्बे।

डा० ताम्बे हमें कुछ सिखाना चाहते थे.

(आचार्य श्री अभयदेवजी संन्यासी)

श्री युत ताम्बे अपने विस्तृत पराक्रमपूर्ण और यशस्वी जीवन के अन्तिम दिनों में गुरुकुल को अपनाने आये और यहाँ भी अपना कुछ वैभव दिखा गये। ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों वे हमें दो बातें सिखाने आये थे—इसीलिये परमेश्वर ने भेजे थे—, क्रियाशील जीवन और निरहङ्कारता।

इस बुढ़ापे में उनकी क्रियाशीलता और कर्मण्यता नौजवानों को लजाने वाली थी। गर्मी-सर्दी-वर्षा सब को तिरस्कृत करते हुए उन्हें अपने काम पर कटिबद्ध कौन नहीं देखता था।

पर साथ ही उनकी अन्तरात्मा आन्तरिक शान्ति स्थापित करना चाहती थी- जिसका प्रकाश उनके निरहङ्कार होने में होता था। वे जब गुरुकुल में

पहिली बार यह देखने आये थे कि मैं गुरुकुल में रहूँ या नहीं, तभी वे जहाँ यह निश्चय कर गये थे कि वे गुरुकुल के हस्पताल में ये- मे इलाज करेंगे, वहाँ वे यह भी निश्चय कर गये थे कि वे उपनिषद् पढ़ेंगे, क्योंकि यही एक चीज़ है जो वे गुरुकुल से लेना चाहेंगे- बाक़ी तो सब कुछ देना चाहते हैं। जब वे मुझ से उपनिषद् पढ़ने आते थे तो जो बातें करते थे उनसे पता लगता था कि उनको एक तरफ़ काम करने की आग लगी हुई है तो दूसरी तरफ़ अपने आप को मिटा देने की भी प्रबल इच्छा है। मुझे उनका वह वाक्य और उस समय की मुद्रा अब तक याद है, जब उन्होंने श्री मुख्याधिष्ठाता जी को कहा था कि, "इस मकान पर मेरे मरने पर भी मेरा नाम नहीं लगाया जाना चाहिये- इसी शर्त से मैं रुपया दूँगा। नाम तो भगवान का है, रुपया भी उसी का है।" मुझे लगता है कि गुरुकुल में उनका स्थापित किया हुआ "श्रद्धानन्द सेवाश्रम" आज भी उन्हें पुकार-पुकार कर याद कर रहा है— किसी लगन-से कर्मण्य और निरहङ्कार सेवक को बुला रहा है— चाह रहा है।

विश्लेषण

(ले०—श्री नरेन्द्र गोयल)

उस दिन कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी की दसवीं बरसी का जुलूस निकल रहा था। महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों में इस अवसर पर उत्साह का पागलपन सा नजर आता था। छोटे बड़े सभी कुलवासी अपनी २ भेंटें ले कुलपिता के अदृश्य चरणों पर भक्तिभाव से चढ़ा रहे थे। जुलूस के अगले हिस्से में पीले दुपट्टे डाले हुए गुरुजन आचार्य को आगे किये हुए जा रहे थे इसी समय मंझले कद की, भारी भरकम वेष वाली, पाश्चात्य रंगरूप में सराबोर एक आकृति सामने आई। साथी ने कहा 'ये एक अवकाश प्राप्त सिविल सर्जन हैं। कराची, कच्छ, भावनगर आदि विभिन्न स्थानों पर मानवसेवा कर अद्भुत हिन्दु की आई नची उम्र बिताने के लिये हरिद्वार

की पंचपुरी में आये हैं।' — इस सूक्ष्म परिचय में मैं इस आकृति में दो लक्ष्यबिन्दु देख पाया, - पैठने वाली पैनी नज़र और कुछ विचित्र सा भाव, जो साधारण मनुष्य पर देखने में नहीं आता; वह था दृढ़ता तथा स्थिरता का एक अदम्य भाव। बात वहीं दब गई। इस जयन्ती के पुण्य पर्व में सब कुछ भूल गये।

× × ×

इधर कुछ दिनों से गुरुकुलीय आयुर्वेद महाविद्यालय में नयी चहल पहल दिखाई दे रही थी। आश्रम के सन से गुजरती हुई रायल रोल्स कारें, भरी हुई गाड़ियां, लगातार आते जाते तांगे प्रतिदिन हमें अपने आउट डोर हॉस्पिटल के नवजीवन संचार को याद दिलाते थे। मेला सा भरा मालूम पड़ता था। आने जाने वालों का एक अनन्त प्रवाह सा बहा चला जा रहा था, और पुण्यतोया भागीरथी के पुनीत तट पर वनौं कुल का नह सेवा उपवन कल्पवृक्ष सा सिद्ध

हो रहा था । सब अपने २ मनोवाञ्छित फलों को ले कर लौटते जाते थे ।

आक्टर ताम्बे जीवट का आदमी था । ताम्बे नाम से प्रसिद्ध कांग्रेस विद्रोही श्री ताम्बे की याद आई थी । नदी के प्रवाह में तो हर कोई बह जाता है, पर प्रवाह को रोक, प्रवाह की ओर बढ़ना खतरे का काम है । मध्यप्रान्त के विद्रोही आक्टर ताम्बे की भी यही विशेषता थी और आक्टर ताम्बे में भी यही गुण कूट २ कर भरा हुआ था । आक्टर ताम्बे कुल में आ पुरानी प्रथाओं को न अपना सके । उन्होंने आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रत्येक विभाग में कायाकल्प करने का प्रयत्न किया । पाठ्यक्रम ही उन्हें पसन्द न था । उन्हें आयुर्वेद महाविद्यालय का शिक्षण क्रम भी पसन्द न था । नियम शिथिलता तथा नियन्त्रण का अभाव उन्हें हार्दिक दुःखी किये रहता था । उन का जीवन सरकारी नौकरी में बीता था जहां उन्हें घड़ी के कांटे पर काम करना पड़ता था - इस का स्वाभाविक असर था कि वे नियम

नियंत्रण को अपने से अलग न कर पाते थे और यही शिक्षा वे सब को देना चाहते थे। वे एक ऊंचे सम्मानित पद पर सारी उम्र काम करते रहे थे उन्होंने सदा आज्ञा देनी सीखी थी आज्ञा देते २ उन के बाल पके थे। इस कुल में आकर भी वे एक ऊंचे पद पर नियुक्त हुए थे। शायद इसीलिये वे कभी सख्त सुस्त बात भी कह उठते थे। नियम पालन में उन्हें ढील-पसन्द न थी। बुढ़ापे में भी उन का हाथ होशियार से होशियार जर्राह को मात देता था। यह था जिंदगी भर का पका हुआ। जिंदगी पैसे के लिये बिताई थी अब परमार्थ के लिये धूनी रमा रहा था। पहिले पैसे के लिये कमाता था अब इच्छाओं से विमुक्त हो परार्थ के लिये खप रहा था।

डाक्टर नाम्बे में एक औसत मरहट्टे की कांती शान थी। उस का उज्वल शानदार बड़प्पन, उसकी कार्यक्षमता हमें महाराष्ट्र केसरी शिवाजी तथा स्वनामधन्य लोकमान्य तिलक की जन्मभूमि की याद दिला देती थी।

इस ने जहां सरस्वती की आराधना करते हुए ऊंची से ऊंची स्थिति - उपाधि प्राप्त की थी, वहां अनुभव के स्कूल में भी वह कच्चा न था - जो कि किसी असाधारण शिक्षित मानव में संभव हो सकता है । उस ने पचहत्तर शरदें अपने बालों को सफेद करने में गुजार दी थीं ।

वह अनुभव धनी था । उस के अनुभवों का मूल्य था बचपन में उन्होंने शिक्षा पाते हुए विद्यार्थी पुस्तकालय की स्थापना की थी । यही चीज़ वे इस कुल में भी स्थापित करना चाहते थे । उन्होंने कुछ अमूल्य पुस्तकें दे कर इस की शुरुआत भी की थी । उन्हें उपदेश से घृणा थी । अमल में लाना; प्रत्येक काम को - यही उन्होंने शिक्षा पाई थी इसी की वे यहां स्थापना भी करना चाहते थे । शायद यही कारण था कि वे सफल वक्ता या लैक्चरार तो न बन सके - सिर्फ इस सर्जन का चतुर माली ज़रूर बन गये ।

कड़कती धूप हो, बरसता दिन हो इस की उन्हें परवाह न थी समय पर सेवा उपवन का बागीचे में उन के दर्शन हो-

जाते थे। अपने पद के अनुरूप ही उन का भारी भरकम शरीर था दूर से ही मालूम पड़ जाता था - कोई महान व्यक्ति उच्च पदाधिकारी चला आ रहा है।

ठाकुर नाम्बे जी में जहां नाना गुण कूट २ कर भरे हुए थे वहां कुछ कमियां भी आ गई थीं। समय तथा परिस्थिति के अनुकूल न चल सकना उन का दोष कहा जा सकता है। 'गुरुकुलीयता' यदि कोई वस्तु है - तो वह कभी २ उन के सामने से ओझल हो जाया करती थी इस बीच में वे गुरुकुल नियमों की सरल आलोचना भी कर लिया करते थे। सम्मति भेद हुआ ही करता है - किन्तु उस सम्मति भेद का किसी अधिकारपूर्ण पद से आख्यान उस जिम्मेदार पद के प्रति गलतफहमी फैला सकता है। हो सकता है यह किन्हीं की सम्मति में गुण हो। व्यक्तिगत गुण भी कई बार समाज की अवस्थिति में अवगुण बन जा सकते हैं। उच्च अधिकारी के मान की कमी आप के व्यवहार में

आती थी, जो कि लम्बी सरकारी नौकरी का सहज स्वाभाविक परिणाम था।

यह सब कुछ होते हुए भी डाक्टर साम्बे की अपनी खासियतें थीं, जो भुलाये नहीं भूल सकतीं।

निरभिमानता, नियम पालन, सेवाभाव, स्वार्थ शून्यता आप में ही थी। तन, मन, धन तीनों आप ने कुल तथा सेवा उपवन में लगाये। आपने अपनी कहलाने वाली ऐसी कोई चीज़ नहीं छोड़ी जिसे कि आप ने कुल के लिये देने का संकल्प न किया हो।

× × ×

डाक्टर साम्बे कुल के पितामह थे। आप चौथेपन में अन्दर हरिद्वार में रहे थे, सेवा-पुण्य आप की दिनचर्या थी, इसी में आप मस्त थे।

पीछे सभी की प्रशंसा होती है। वाहवाही होती है। गुजरने पर कौन किस की प्रशंसा करने में हिचक

सकता है जब ऐसा करने और न करने में उस का कुछ बनता बिगड़ता नहीं है।

ठाकुर जी के प्रशंसक भी थे, आलोचक भी थे। किन्तु उन को परखने की असली कसौटी उन की चिकित्सा थी जिस की बदौलत उन्होंने सब को मोह लिया था।

आह !

(श्री दुर्गादेव [illegible])

तुम चले गये-

उस अमर लोक की ओर ,

किन्तु हम छले गये

विस्मृत से !

बह चिर अतीत—
जिस में अवतीर्ण हुवे थे तुम मानव बन,
— की रही याद ही शेष,
खो गये किन्तु अपनापन
तुम संसृति में !

हम मूढ़ मनुज
यों खड़े देखते रहे मुग्ध,मुंह बाये ,
पर अनजाने ,
उस काल कुटिल के छल से
हम विरह जनित
दुख - दले - गये
विस्मित से !

-'सूर्य कुमार'

कर्मवीर गोपाल

(ले०—श्री ठा० राधा कृष्णा जी)

आदमी तो चला ही जाता है, परन्तु नाम रह जाता है। उस ८० वर्षीय वृद्ध महापुरुष ने सिद्ध कर दिया कि जीवन के अन्तिम दिनों तक भी मनुष्य काम कर सकता है। सुस्ती तो उस से कोसों दूर भागती थी। जब देखो दिन हो चाहे रात, काम करता ही दिखाई देता था। काम भी साधारण नहीं प्रत्युत ठोस दिमागी। कभी चिकित्सा की नवीन से नवीन पुस्तकें पढ़ रहा होता था, कभी आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों के नोट लेता था और नहीं तो अन्य कोटि की पत्रपत्रिकाओं का ही अवलोकन करता रहता था। इतना परिश्रम करते हुए भी ज़िन्दा-दिल इतना कि बिना मखौल किए बिना न रह सकता था। चुटकी बड़े मज़े से लेता था।

उस का कार्य निरुद्देश्य नहीं था। वर्षों पहले उसका उद्देश्य की पूर्ति का कार्यक्रम निश्चित हो जाता था। कहता था— "आयुर्वेद महाविद्यालय का अध्यक्ष हूं। वैद्य महानुभावों के काम का भी निरीक्षण करना है, इसलिए तो वैद्यक का अध्ययन आरंभ किया है।" किसी ने कहा— "चिकित्सालय में आपने

बहुत सा रुपया लगा दिया है" । उत्तर दिया - "भाई, अभी तक तो गुरुकुल के अधिकारी कामधेनु नहीं हैं कि जिससे जो चाहा ले लिया । इस गाय को दोहने के लिए चारा देना पड़ता है । निजू रुपया नहीं लगा रहा बल्कि गाय को चारा दे रहा हूं जिससे यह गाय मेरी इच्छानुसार दूध दे सके ।

ठाकुर साहब आदमी खूब पहचानते थे । कहते थे - "रियासतों में रहा हूं । वहां आदमियों की बड़ी जांच करनी पड़ती है ।" कोई भी आदमी एक बार उनके पास पहुंच जाने पर उन्हें अपना समझे बिना न रह सकता था । इसी प्रकार जब उन्होंने एक सेठ को वश में किया तो मैंने कहा —— "आप क्या वशीकरण मन्त्र चलाते हैं ?"; हंसकर बोले - "वही जो तुम पर चल चुका है ।"

गुरुकुल में उन्होंने मेडिकल विभाग की तो कायापलट कर दी थी । एक तो रिटायर्ड सिविल सर्जन, फिर पुराने अनुभवी और सब से बढ़कर उत्साही और परिश्रमी । आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रत्येक कर्मचारी पर उनकी नजर रहती थी । कहते हैं उन्होंने अपने अनुभव रिपोर्ट रूप में गुरुकुल के अधिकारियों के सामने रखे । ब्रह्मचारी भी उनकी निगाह से न बचे थे । ब्रह्मचारियों के आलस्य से प्रायः दुखी रहते थे । परन्तु कहते थे क्या करूं, दोष इनका नहीं वायुमण्डल का है । जब तक आयुर्वेद महाविद्यालय अन्य महाविद्यालयों से पढ़ाई और

और आफत दोनों प्रकार से पृथक् नहीं जायगा तबतक मेडिकल वायुमण्डल नहीं बन सकेगा।

मेडिकल चिकित्सा में निपुण तो थे ही, शल्यकर्मों में भी उन्होंने बड़ी क्षमता प्राप्त की थी। कठिन से कठिन शल्यकर्म भी उनके हाथों में सरल था। बूढ़े कांपते हाथ भी कैसी सुगमता से आप्रेशन कर जाते थे। फुफ्फुस में स्पाइनल इंजेक्शन देना उन्हीं का कार्य था। सुनाते थे— "गर्भाशय बहिष्करण जैसे शल्यकर्म भी अकेले कर चुका हूं, मारना ऑप्रेशन कर डाले, अब हिम्मत कहां की।"

ऐसे कुछ उत्साही महापुरुष, जिसने मरते दम तक निष्काम कर्म नहीं छोड़ा, के चरणों में मैं नमस्कार करता हूं और उनकी आत्मासे आशीर्वाद की याचना करता हूं॥

साधु का शाप

(ले०— श्री बुद्धदेव [illegible])

डा० नाम्बे साहब गुरुकुल के उत्सव के साथ ही गुरुकुल में आए। उन्होंने प्रत्येक अधिकारी को आयुर्वेद महाविद्यालय से पूर्ण सहयोग देने में बाध्य किया। ब्रह्मचारियों को भी सहयोग देने के लिए कहते ही रहते थे। इस बात के लिए उन्होंने जिस ब्रह्मचारी में जरा सी ढील पाई उसको समझाया भी डांटा भी। परन्तु उनका कुछ रोगियों के साथ व्यवहार अच्छा न था। वे कुछ रोगियों को अपने जूते से मार देते थे। मारना उनका एक तरह से अधिक अनुचित भी नहीं। जबकि एक शहरी डाक्टर ग्रामीण रोगियों के बीच में हो तो उसे ऐसा करना ही पड़ता है। ग्रामीण भाई इस बात को कुछ अनुभव भी नहीं करते थे।

धीरे २ बाहर के अस्पताल में बहुत अच्छे २ केस भी आने लगे परन्तु नाम्बे का व्यवहार वैसा का वैसा ही बना रहा। एक दिन एक साधु किसी दर्द की शिकायत लेकर आया। उसने बड़ी नम्रता से डाक्टर साहब को दिखलाना चाहा परन्तु नाम्बे साहब ने लात मारकर कहा कि, रहो, अभी तुम्हारी बारी नहीं आई है। साधु इस बात को सहन न कर सका।

वह साधु वहां से तो चला गया और मुद्रणालय (Press) की एक दीवार के साथ बैठकर अपने साथ किए गए दुर्व्यवहार के विषय में सोचने लगा।

उस साधु ने फिर नायक साहब को शाप दिया कि जिस प्रकार इसने मेरी बीमारी का कोई ख्याल न किया — उसी प्रकार इसके भी जिगर में दर्द उठेगा। और कोई पूछने वाला न होगा और यह कैसे ही मर जायगा।

धीरे धीरे छुट्टियां हुई — ब्रह्मचारी अपना अपना बिस्तर, बांधकर यात्रा के लिए रवाना हो गए। सबके जाने के बाद नायक साहब के पित्ताशय Gall Bladder में दर्द हुआ। उस समय उनको पूछने वाला कोई न था। वे इलाज के लिए Bombay गए। साथ ही उनके गुरुकुल से जाने के एक दिन पीछे उनका परमप्रिय मित्र पेती भी चला गया।

- — और दुर्भाग्य की बाजी, या उस साधु का शाप कहिए कि उनका वहीं पर देहान्त हो गया। और जैसे कि वह साधु का शाप कमर पर हाथ रखे खिलखिलाकर अट्टहास कर रहा था।

श्रद्धाञ्जलि

(ले. श्री प बलानन्द जी)

श्री डा. नाम्बे को देखने से ऐसा जान पड़ता था कि उनके दिल में आयुर्वेद विभाग को पूर्ण उन्नत करने के लिए सतत लगन है। वृद्धावस्था में भी उनके अनवरत उत्साह तथा कर्मण्यता को देखकर शिर उनके प्रति सहज ही झुक जाता है। उनके त्याग उत्साह तथा कर्मण्यता में उनकी सदाचार व आत्मा की दिव्य ज्योति प्रतिफलित होती हुई प्रतीत होती थी। ऐसे महापुरुष को मैं बड़ी प्रसन्नता से अपने श्रद्धा के कुसुमों की अञ्जलि समर्पित करता हूँ।

एक मरहट्टा

(ले० श्री [illegible])

उस दिन घर से लौटते हुए जब मैं दिल्ली में उतरा और नया बाँस की आर्य समाज में सामान रखकर वहीं के वाचनालय में अखबार पढ़ने के लिये बैठा, तो सहसा साप्ताहिक 'अर्जुन'' के अन्तिम पत्र पर मेरी दृष्टि चली गई। मैंने देखा, उस पृष्ठ पर एक चित्र छपा हुआ था। उस चित्र की काली पगड़ी स्पष्ट ही यह प्रगट कर रही थी कि वह किसी महाराष्ट्रदेशीय व्यक्ति की है। उस चित्र के सिर पर लिखा हुआ था – "स्वर्गीय ताम्बे", मैं पढ़ते ही सहम गया।

कोई भी व्यक्ति जो हमारे सम्बन्ध में आ चुका है, जिसे हम ने जीवित अवस्था में किसी समय देखा है, जब दिवंगत हो जाता है, तो प्रथम तो मनुष्य चौंक उठता है, फिर उस घटना पर विश्वास करने के लिये इच्छा नहीं होती। लेकिन कब तक? मनुष्य की मर्ज़ी हो या न हो, संसार की अवश्यम्भाविनी घटनाएं उस पर विश्वास दिला कर ही छोड़ती हैं। मनुष्य अपने मन को मसोस कर रह जाता है। मुझे भी श्री ताम्बे जी के इस निधन पर विश्वास करना पड़ा - विवश होकर, यदृच्छया नहीं।

× × ×

मैंने जब पहिली बार डा. ताम्बे को देखा और मुझे पता चला कि वे महाराष्ट्र के रहने वाले हैं, तो मैं उन के प्रथम दर्शन में ही उन को चाहने लग गया था। वैसे तो कोई भी महाराष्ट्र देश का रहने वाला, जब मुझे दिखाई देता है, तो मेरी आंखे उस पर एकदम गड़ जाती हैं और मेरी इच्छा हो जाती है कि मेरा उस को पता चल जाने कि वह

भी एक अभागा, हिन्दुस्तान के इस कोने में पड़ा हुआ है, जिसे अपनी मातृभूमि की गोद नसीब नहीं है। लेकिन ताम्बे जी तो हमारे कुल के एक सदस्य बन गए थे, अतः, उन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने की अभिलाषा का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था।

मुझे ख्याल आता है कि एक दिन ताम्बे जी सफ़ेद धोती और सफ़ेद कुर्त्ता पहने हुए हमारे भोजन-भण्डार में भोजन करने के लिये आते आये थे, उस समय मैंने ताम्बे जी को देखा तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे पिता जी की ही शक्ल है, केवल फ़र्क़ इतना है कि ताम्बे जी का सिर केश... है और मेरे पिता जी का सिर वैसा नहीं है। एक तो, मेरी मातृ-भूमि महाराष्ट्र के निवासी – उस पर आकृति भी मेरे ही पिता जी की, मैं तरस उठा उन्हें अपना परिचय देने के लिये; पर मेरी तरस तरसती ही रह गई और मेरी इच्छा आज तक वैसी ही अपूर्ण पड़ी है।

× × ×

जब कभी मुझे अपने महाराष्ट्र की याद हो आती है, और मैं कभी अखबारों में पुणे (पूना)

की कोई खबर पढ़ता हूं, तो दिल जाने कैसा होने लग जाता है। सौभाग्य से मैं गतवर्ष 'पुणे', (पूना) 'आम्बुई', 'मुम्बई', 'सोलापूर', 'परली बैजनाथ' इत्यादि अपने महाराष्ट्र के प्रतिष्ठित नगरों का दर्शन कर आया हूं, और विश्वास दिलाने की ज़रूरत नहीं कि इन दिनों मैं शरीर से तो गुरुकुल की इन चहारदीवारियों के अन्दर ही हूं, लेकिन मेरा दिल हमेशा 'पुणे', 'आंबुई' के राजधानी पर ही भटकता रहता है।

जब कभी 'प्रेस' जाने का अवसर आता है, और मुझे वहां लगा हुआ श्री डा. ताम्बे जी के हस्ताक्षर से युक्त साइन बोर्ड दृष्टिगोचर होता है, तो सहसा ताम्बे जी का ख्याल आ जाता है। दिमाग में ताम्बे जी की तसवीर चक्कर काटने लगती है और मेरे दिल को महाराष्ट्र की याद से भर देती है। ताम्बे जी के रहते दिन-दूने रात-चौगुने वेग से फलने फूलने वाली शल्य-क्रिया-भवन के सामने की वाटिका आज अनाथ की तरह तिरस्कृत तथा उपेक्षित सी दिखाई देती है। वे मुरझाते हुए पेड़

और फूल पत्ते आज भी मुझ को इस बात का विश्वास दिला रहे हैं कि ताम्बे जो विद्युत हो चुके हैं।

महाराष्ट्र के उस वृद्ध प्राणाचार्य के पुनीत चरणों में उसी के देश के रहने वाले, उस के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने के लिये तरसते रहने पर भी अतृप्ततृष्णा, सामान्य-महाविद्यालय के इस अकिञ्चन छात्र की प्रणामाञ्जलि स्वीकृत हो।

वैद्य

(ले० – श्री देव)

एक जोशीला वृद्ध युवा, – मोहक रूप, भव्य आकृति, उन्नत ललाट, पलित केशराशि, सतर्क नयन-युगल, जीवन के त्रिपाद में भी द्विपाद, दीन-दुखियों का सहारा, मूक फल पत्तियों का माली, प्रखर आयुर्वेद-वटुओं का गुरु, हमारे कुल का एक चमकता हुआ सितारा आज हमारे बीच में नहीं है।

निशि दिन अनथक काम करने वाला, वर्षा में - आंधी में - गर्मी में - सर्दी में - आठों पहर भूख प्यास को भुला, निरन्तर काम करके अपनी उम्र को घटाता हुआ, यशस्वी तपोनिधि, आर्त-मानवता का बन्धु, कर्मवीरों में मुखिया, वीरों



डा० गोपाल रामचन्द्र ताम्ने.
ऐम्.ए, बी.एस्.सी, ऐल्.ऐम् ऐण्ड ऐस्.
के.आई.ऐम्, प्राणाचार्य.
अध्यक्ष गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय

मे अर्जुन, सत्यव्रतधारियों मे युधिष्ठिर छिपा रुस्तम आज छिप कर हमारी परीक्षा ले रहा है।

एक औसत मरहठा, चलते समय इतनों को रुला गया। केवल अपने को मिटा कर, अपना सब से अच्छा उपयोग कर के, अन्त मे कर्त्तव्य का सर्वोच्च आदर्श दिखा कर, अस्तंगत नक्षत्र फिर नयी आभा से, नये जोश से हमारे अज्ञानान्धकार को नष्ट करने के लिये ही बिछुड़ गया है। उस की धवल-कीर्त्ति यही आशा दिलाती है।

वह जीवित था, केवल कर्त्तव्य के लिये ही। उस का कर्म कर्त्तव्य था और फल भी कर्त्तव्य था। उसे शेष दुनियां से कुछ सरोकार न था। वह तो अपने परोपकार-कर्म मे तल्लीन था - सोते जागते इसी मे लगा रहता था। उसे और कोई चाह न थी। केवलमात्र कर्त्तव्य उस का आदर्श था, और बुढ़ापे की लठिया थी और था वह उस का अन्तिम अवस्था मे वंश-परम्परा को चलाने वाला अन्तिम पुत्र।

शिष्यों को श्रद्धास्पद गुरु, आर्त्तजनों का सच्चा

बन्धु, धनियों के लिये धनी, दरिद्र नारायण का सेवक-भक्त, पूर्व-पश्चिम का अनुपम मेल वह सज्जन, परोपकारनिष्ठ, प्रभावशाली मूर्ति आज हमारे बीच में नहीं है।

........उस की अब याद ही रह गई है।......

गी

(आनन्द

वह था मानव !
देव नहीं था, प्रतिमानव भी नहीं,
न था दैत्य या कोई दानव !
वह था मानव !
वह अनादि सत्व,
जिस से निर्मित हुआ दुर्बल मानव का
प्रतिरोध ;
किन्तु गेय,
चिर संस्पन्दित, नन्दित, वन्दित
रे, चिर प्राक्रन्दित—
हृदय तत्व,
पाता था उस से भी प्रश्रय नव नव,
वह था मानव !

त

द्वादश)

रे, वे बाल पल्लव, पत्र,
उठ गया जिन के सिर परसे उसका
कोमल कर-आतपत्र,
विरह की गुरु ज्वाला से झुलस
जरा जीर्ण,
शुष्क, शीर्ण,
साँय्-साँय् करते पवन के-
झकोलों के संग संग
झुला कर अपना अंग-अंग,
कभी कभी कर उठते हैं,
मर्मर के मिस आर्तरव —
'वह था मानव'
वह था मानव!

एक आदर्श चिकित्सक

(ले०- श्री पं० सूर्यदेव जी आयुर्वेदाचार्य)

६ अक्टूबर के एक मनहूस दिन अचानक हमने सुना कि इस परिवर्तनशील असार संसार में डा० गोपाल रामचन्द्र ताम्बे नहीं रहे। हमारे पाठक इस आदर्श व्यक्ति के विषय में कुछ जानना चाहेंगे। एक चिकित्सक का आदर्श क्या है, उसको अपनी आयु की चिन्ता न करके किस प्रकार ज्ञान-सञ्चय में तत्पर रहना चाहिये- इत्यादि कुछ चिकित्सक जीवन की सफलता की कुञ्जी जानने के इच्छुक लोग इस चोरू चरित्र को पढ़ने का कष्ट करें।

डाक्टर गोपाल रामचन्द्र साम्बे महाराष्ट्र के निवासी थे। इन्दौर और काठियावाड़ के देसी राज्यों में चिकित्सक का कार्य कर चुके थे तथा ब्रिटिश भारत में कई वर्षों तक सिविल सर्जन का का पद सुशोभित कर चुके थे। इस प्रकार आपका चिकित्सक जीवन ५० वर्ष का था, और आपकी आयु ७५ वर्ष की थी। इस बात से पाठक उनकी योग्यता और अनुभव का सहज में ही अनुमान कर सकते हैं। सरकारी नौकरी से मुक्त होने पर आपने अपना अवशिष्ट जीवन किसी परोपकारकार्य में लगाना चाहा। इन्हीं दिनों गुरुकुल विश्वविद्यालय काङ्गड़ी के आयुर्वेद महाविद्यालय का पद खाली था, आपने इसी पद पर अपनी अवैतनिक सेवा देनी स्वीकार की और गुरुकुल में आगये। यहीं से आपका और हमारा यथार्थ परिचय आरम्भ होता है।

गुरुकुल में आते ही आपने बाह्य चिकित्सालय (Out-door Hospital) के शल्यतन्त्रविभाग (Surgical Department) को सँभाला और तीन मास के अल्प समय में ३०० के लगभग ऑपरेशन किये। इसके अतिरिक्त असाध्य रोगों पर अपनी सम्मति देना, रोगियों को घर जाकर देखना, गरीब रोगियों को अपने खर्च से भोजन वस्त्र तक देना आदि ऐसे कार्य हैं जो आपको स्वयं आदर्श कहने के लिये बाध्य करते हैं।

एक और बात भी जो इनके साथ काम करने वाले हम लोगों ने देखी, वह थी आपकी कार्यसंलग्नता। आप कार्य करते हुए कभी थकते नहीं थे। ८ बजे सवेरे से १२-१ बजे तक तो शल्यक्रियाभवन (Operation Theatre) में बिता देते थे। Operation करते समय आप दुनियाँ से ऊपर उठ जाते थे, अपने देह की सुध-बुध ही न रहती थी। मई, जून की गर्मी में ६-६ घण्टे लगातार शल्य-क्रिया-भवन

में खड़े, हमने आपको देखा था। पसीने से जब रेशमी कुर्ता तर हो जाता था तो कुछ भद्र पुरुष पंखा करने लग जाते थे - परन्तु डा० साहब कहते थे, "Don't disturb please". हम - उनके सहयोगी - खड़े २ थक जाते थे और उनकी नज़र बचाकर Operation Theatre में कहीं बैठने की जगह तलाश करते थे, परन्तु इतने पर भी ७५ साल का वह वृद्ध डाक्टर हमसे पूछता था, "क्या और कोई Operation बचा है?" हम कहते थे, "डाक्टर साहब, अब आज रहने दीजिए - और ऑपरेशन कल होंगे।" इस पर वे कहते — आजकल के नवयुवक सब काम कल पर ही छोड़ते हैं, कल तो और नये ऑपरेशन करने हैं — और ज़ोरों से हँस दिया करते थे।

एक और की बात है - एक सिक्ख नवयुवक हमारे शल्य-क्रिया-भवन के दरवाज़े पर पड़ा-पड़ा चीख़ रहा था। पता लगा कि उसको Urethral Stricture

से महान कष्ट है। उस दिन डाक्टर साहब के सारे शरीर में वेदना थी। आप बार बार अपने सहायकों से कहते थे, "Doctor, my body is aching". इतने ही में आपको उस रोगी नवयुवक सिक्ख की सूचना दी गई। आप तुरन्त एप्रन पहिन कर शल्यकर्म के लिये तैयार होगये। मैंने कहा – आज बीमार हैं, इस Case को फिर देखा जायगा; परन्तु उन्होंने उत्तर दिया – "मैं तो बूढ़ा हूँ, अगर मर भी गया तो बूढ़े तो मरने के लिये ही होते हैं; पर यह तो बिचारा अभी नौजवान है – इसकी जान तो हमें बचानी ही चाहिये।" उसी दिन ऑपरेशन किया गया – और वह मरीज़ अच्छा होकर चला गया।

चिकित्सालय के कार्य से अवकाश मिलने पर शामको वे बाग़ में चले जाया करते थे। पौधों की सूखी-सड़ी-गली टहनियों को काटा-छाँटा करते थे। इस प्रकार इस बुढ़ापे में भी हमने उनको कभी आराम से बैठे मौज करते नहीं देखा था।

डाक्टर लाम्बे साहब के आयुर्वेद के प्रति प्रेम और ज्ञान सम्बन्ध के भी कुछ किस्से सुनिए।

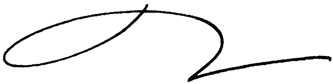
एक दिन मैं डॉक्टर साहब के पास गया, वे कुछ लिख रहे थे। मैंने उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हुए कहा कि, "डाक्टर साहब! चिकित्सा (Medicine) की कोई अच्छी पुस्तक बताइये।" उन्होंने कहा, "यद्यपि मैंने आयुर्वेद का विशद अध्ययन नहीं किया - पर फिर भी इस बुढ़ापे में मैं कुछ आयुर्वेद का अध्ययन कर रहा हूँ। इस अध्ययन के आधार पर मेरी आयुर्वेद में अपार श्रद्धा है और मैं भारत के लिये सर्वोत्तम चिकित्सा पुस्तक "चरक" को समझता हूँ— इसी कारण इसका अंग्रेजी अनुवाद कर रहा हूँ।"

उस दिन हमारे बौद्ध चिकित्सालय में बहुत भीड़ थी। उसी भीड़ में कुछ आदमी एक मनुष्य को पकड़े खड़े थे - और वह ज़ोर-ज़ोर से सिसक रहा था। डाक्टर साहब का ध्यान तुरन्त उसकी ओर गया। उन्होंने हमसे कहा, "देखो, इसे क्या तकलीफ़ है?" हमने उसकी ओर

आदि आवश्यक परीक्षाएँ करके कहा- "इसके पेट में कुछ पानी मालूम होता है।" इसके बाद वे स्वयं आए और देखकर कहने लगे कि, "कुछ पानी नहीं — इसके पेट में तो समुन्दर है"; और लोग साथ ही हमारी खबर लेते। उन्होंने कहा, "जब नहाने जाया करो- तो उस समय क्योंकि शरीर खुला होता है, अतः अपने स्वस्थ फुफ्फुस, यकृत और पेट पर ठोर (Percussion) किया करो। जब किसी काम में मन न लगे तो श्रवणयन्त्र (Stethoscope) लेकर फुफ्फुस और हृदय के शब्द सुना करो। इससे तुम्हारा समय भी बचेगा और तुम रुग्ण तथा स्वस्थ रचनाओं का भेद भी समझ सकोगे। मैं तो अभी तक ऐसा करता हूँ।" हम उस वृद्ध प्राणाचार्य की समय-सदुपयोगिता पर मुग्ध थे और अपने भावी जीवन के लिये कुछ शिक्षा ले रहे थे। हमने सोचा- यह पुराण पुरुष प्राचीन पुरुषों से कहे गये इस वचन, "अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्" का पूर्णरूप से पालन कर रहा है।

पाठक! आप और हम भी चिकित्सक हैं। चिकित्सक का कर्म कितना कठिन है - कितना दुष्कर है! इसमें हमको ज्ञानार्जन के लिये किस प्रकार तत्पर रहना चाहिये, मानवजीवन के लघुक्षणों का मूल्य किस प्रकार आँकना चाहिये, मूक दया का स्रोत हमारे मनों में किस प्रकार बहना चाहिये - इन सब बातों की उस महापुरुष से शिक्षा लें। आइये! आप और हम मिल कर उस दिवङ्गत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें और उसके जीवन से पाठ पढ़ें प्रेम, परोपकार, कार्यतत्परता और ज्ञानार्जन का।

विश्वविधाता उस विश्वमानव-प्रेमी की आत्मा को शान्ति प्रदान करें।



श्रद्धानन्द सेवाश्रम

(ले० – श्री [illegible])

भारतवर्ष ऐसा दीन हीन दरिद्र देश है जहां रोगी होने पर इतना ही नहीं कि रोगी मुफ्त इलाज नहीं करा सकता, परन्तु इसके साथ ही क्योंकि वह रोज़ की मजदूरी से गुजारा चलाता है अतः रोगी होने पर भोजन का भी प्रबन्ध किसी प्रकार नहीं कर सकता। इस दृष्टि को सन्मुख रख कर गुरुकुल में एक नवीन योजना का प्रारम्भ किया गया है और वह योजना पर्याप्त सफल हो रही है।

नवीन योजना का विचार —:

गुरुकुल के पास एक बहुत उत्तम 'शल्य-क्रिया-भवन' (Operation Theatre) है जिस पर पांच हजार रुपया खर्च हो चुका है। इस भवन में सब प्रकार के आपरेशन करने का सामान मौजूद है। सन् १९३४ में कैप्टन रामचन्द्र जो रिटायर्ड सिविल सर्जन हैं, गुरुकुल में पधारे और उनकी देख रेख में सब तरह के आपरेशन किये गये। इस परीक्षण से गुरुकुल के अधिकारियों को यह अनुभव हुआ कि दीन दुखियों का कष्ट दूर करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति समय दें तो हरिद्वार के आसपास इस प्रकार के दुःखी व्यक्तियों की संख्या की कमी नहीं जो गुरुकुल के चिकित्सालय में आकर इससे लाभ उठाने के लिए ~~[illegible]~~ लालायित हो उठेंगे। कैप्टन रामचन्द्र ने गुरुकुल में जिस सेवा-भाव के अंकुर को बोया उसे गुरुकुल के कार्यकर्ताओं ने बड़े परिश्रम से सींचना प्रारम्भ किया। १९३८ की दीवाली के बाद यह विचार किया गया कि गुरुकुल की तरफ से आंखों की बीमारियों का



'श्रद्धानन्द सेवाश्रम' के संस्थापक.

का इलाज करने तथा मोतिया बिन्द आदि का आपरेशन करने का बड़े पैमाने पर प्रबन्ध किया जाय। देहरादून तथा मसूरी के प्रसिद्ध नेत्र-रोग-विशारद डा० बी० एस० राथके ने अपनी सेवायें गुरुकुल को भेंट की और लगभग पांच सौ रोगियों का निरीक्षण तथा उनकी चिकित्सा की गई। डा० राथके ने जिस परिश्रम, लगन लगन तथा उत्साह से किया वह सराहनीय है। डा० राथके के कार्य से यह अनुभव और भी अधिक दृढ़ होगया कि गुरुकुल को इस सेवा कार्य को भी अधिक संचालित कार्य करना चाहिए। इसी बीच में गुरुकुल को एक बहुत ही योग्य चिकित्सक सेवायें प्राप्त होगई। आप का नाम है डा० गोपाल राम चन्द्र ताम्बे। यहां डा० ताम्बे का कुछ परिचय करा देना अप्रासंगिक न होगा।

डा० गोपाल रामचन्द्र ताम्बे :-

डा० गोपाल रामचन्द्र ताम्बे एक बहुत ही योग्य चिकित्सक थे। आप एम० ए०, बी० एस० सी०, एल० एम० एण्ड एस० तथा प्राणाचार्य थे। १९०२ में आप कई रियासतों में स्टेट सर्जन तथा ब्रिटिश गवर्नमेण्ट में सिविल रह चुके थे।

आप अभी वृद्ध होते हुए भी कार्यशील उत्साही तथा साहस में नवयुवकों से भी आगे बढ़े हुए थे। जिस समय गुरुकुल की चिकित्सालय विषयक नवीन योजना समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई उस समय गुरुकुल के सौभाग्य से डा० ताम्बे भी यही विचार कर रहे थे कि किसी उच्च कोटि की संस्था में बैठ कर मानव जाति की सेवा में अपनी जीवन-सन्ध्या बितायें। दोनों को एक दूसरे की जरूरत थी। गुरुकुल को डा० ताम्बे जैसे व्यक्ति की तथा डा० ताम्बे को गुरुकुल जैसी संस्था की आवश्यकता थी। भाग्य ने दोनों को मिला दिया और और गुरुकुल को 'शिक्षा' तथा 'सेवा' के कार्य में एक बहुत ही अनुभवी हाथ का सहारा मिला। डा० ताम्बे के गुरुकुल में आने से गुरुकुल की सेवा की योजना तीव्र गति से बढ़ने लगी और उन्हीं की देख रेख में इस 'श्रद्धानन्द सेवाश्रम' की स्थापना कर दी गई।

योजना का स्थूल रूप —:

चिकित्सालय द्वारा मानव जाति की सेवा के विचार ने अब स्थूल रूप धारण कर-

लिया है। और गुरुकुल के सम्मुख अब ऐसी योजना उपस्थित है जिसे क्रियात्मक रूप देने की आवश्यकता है।

पहले कहा जा चुका है कि गुरुकुल में दो प्रकार के रोगियों का प्रबन्ध करना आवश्यक प्रतीत होता है। एक ऐसे रोगी जो औषधि लेने आते हैं और लेकर चले जाते हैं। इनके लिये 'बाह्य चिकित्सालय (Out-door Hospital) की आवश्यकता है। दूसरे ऐसे रोगी जिन्हें गुरुकुल के चिकित्सालय में रख कर, आवश्यकता होने उन्हें कपड़ा तथा भोजन देकर, उनकी सेवा की जाय। ऐसे रोगियों के लिए अन्तः चिकित्सालय (Indoor Hospital) की आवश्यकता है।

<u>बाह्य चिकित्सालय</u> (<u>Out door Hospital</u>) —:

'श्रद्धानन्द सेवा आश्रम' के लिए गुरुकुल के पास ३०-४०-बीघे जमीन है। बीच में एक विशाल तथा भव्य शल्य क्रिया भवन है उसके चारों तरफ जमीन खाली पड़ी है। इस भूमि पर दो बड़े-बड़े ब्लाक बनवाने का विचार है एक एक ब्लाक पर आठ हजार रुपया व्यय होगा। एक २

ब्लाक में कई कमरे होंगे। किसी कमरे में आयुर्वेदिक औषधियां रखी जायेंगी, किसी में एलोपैथिक। किसी कमरे में मलहम पट्टी का सामान होगा, किसी में आंखों तथा दांत आदि देखने का। एक कमरा एक्स-रे के लिये भी बनवाया जायेगा। इस औषधालय में जो वैद्य काम करेंगे उनके लिए अलग कमरे की जरूरत होगी, डाक्टर परीक्षण के लिए अलग कमरे की, रोगियों के बैठने के लिये अलग स्थान की।

'अन्तः चिकित्सालय' (Indoor Hospital) -

बाह्य चिकित्सालय से भी आवश्यक 'अन्तः चिकित्सालय' है। इस में उन रोगियों की सेवा की जायेगी जिन्हें दुःख से छुड़ाने वाला संसार में परमात्मा के अतिरिक्त कोई भी नहीं है। जो व्यक्ति कभी किसी रोग में से गुजर चुका है, और संसार में कौन है जिसे कभी किसी रोग ने न आ घेरा हो, वही समझ सकता है कि रोगियों की सेवा में मानव जाति की कितनी भारी सेवा है। वेदों में चिकित्सक को 'मालय' कहा गया है गुरुकुल अपने ब्रह्मचारियों

के सम्मुख सही ब्राह्मण का आदर्श रखना चाहता है, और इसका सर्वोत्तम उपाय यही है कि इस संस्था में ही ब्रह्म-चारियों के सम्मुख ऐसा आदर्श उपस्थित किया जाय जिस से उनके हृदयों पर सेवा-भाव के संस्कार अंकित होजायें।

परन्तु 'अन्त: चिकित्सालय' का रूप क्या हो? इसके लिये सबसे पहली चीज मकान है। जब तक रोगियों के लिये उत्तम मकान न बनाये जायं तब तक इस प्रकार का चिकित्सालय उन्नति नहीं कर सकता है। गुरुकुल के 'अन्त: चिकित्सालय' के लिये दस रोगी गृहों (Wards) की आवश्यकता है।

रोगी शय्या (Beds) —

रोगी शय्या (Beds) का अभिप्राय क्या है? एक-एक रोगी गृह (Wards) में दस-दस रोगियों के रहने का प्रबन्ध होगा। प्रत्येक रोगी को एक लोहे की चारपाई दी जावेगी जिसपर बढ़िया मज़बूत दरी, गद्दा, चद्दर, तकिया, गिलाफ, मोम जामा, रज़ाई कम्बल

सब कुछ दिया जायगा। प्रत्येक रोगी के लिये कुर्ता, पाजामा तौलिया भी अलग होगा। इन कपड़ों को प्रतिदिन धुलाना जरूरी होगा। इसके साथ प्रत्येक रोगी के लिए चिकित्सालय के अन्य अनेक पदार्थों की आवश्यकता होगी। कोई-कोई रोगी ऐसा भी होगा जिसका खाने का भी ठिकाना न होगा, उस के लिये आवश्यकतानुसार दूध, दही तथा भोजन का प्रबन्ध भी करना होगा। रोगियों की सेवा-शुश्रूषा के लिये कम्पौण्डर तथा भृत्य भी रखना होगा।

कितनों की सेवा हुई! —:

१९३४ से १९३८ तक गुरुकुल के चिकित्सालय ने रोगियों की जो सेवा की उसका ब्योरा निम्न लिखित है :—

वर्ष	पुरुष	स्त्रियां	बच्चे	योग
१९३४	३९०५	१४४६	६३४	५९८५
१९३५	४२८५	२०९५	१०२४	७४०४
१९३६	३८००	२३२१	२०६६	८१८[illegible]
१९३७				
१९३८				

यह तो वह सेवा है जो 'बाह्य चिकित्सालय' (Outdoor Hospital) में हुई। इसके अतिरिक्त 'अन्तः चिकित्सालय' (Indoor Hospital) का यह हाल है कि अभी तक केवल दो 'रोगी गृह' (Wards) बने हुए हैं और प्रत्येक में दस २ रोगी रह सकते हैं। जब से ये रोगी गृह बने हैं तब से वे दोनों भरे रहते हैं। और दिनों दिन अधिक रोगी गृहों (Wards) तथा अधिक 'रोगी शय्याओं' (beds) की आवश्यकता अनुभव हो रही है।

गुरुकुल ने सेवा का व्रत लेकर इस क्षेत्र में कदम रख दिया है। गुरुकुल के कार्यकर्ताओं के पास जो कुछ है वह इस सेवा के यज्ञ में आहुति के रूप में उपस्थित है। गुरुकुल के पास उत्तम उत्तम वैद्य हैं, डाक्टर हैं — वे सब तन, मन लगाकर इस यज्ञ को सफल बनाने में लगे हुए हैं। गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय (Medical college) के ब्रह्मचारी दिन-रात एक करके दीन, दुःखी तथा दरिद्र रोगियों की सेवा में लगे हुए हैं। गुरुकुल तो

इतना ही कर सकता है। इसकी सफलता जनता के हाथ की है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम से, उन्हीं की चलाई हुई नगरी गुरुकुल कांगड़ी में शारीरिक कष्ट से पीड़ित रोगियों के लिये 'श्रद्धानन्द सेवाश्रम' (Shradhanand Medical Mission) की स्थापना की गई है। इस मिशन की स्थापना करते हुए यह ध्यान में रखा गया है कि ग्राम में रहने वाली भारत की जनता की रोग-दुःख हरने में गुरुकुल अपना हिस्सा पूरी तौर से दे। गुरुकुल के ब्रह्मचारी-कर्मचारी वैद्य तथा डाक्टर तनमन से इस कार्य को उन्नत करने में लगे हुए हैं। कार्यकर्ताओं के हृदय में स्वामी श्रद्धानन्द की कीर्ति अमर करने की उमंग है। और उस शहीद के आशीर्वाद को लेकर जनता की सेवा करने की लालसा है। इस पुण्य कार्य में जो जितना दे थोड़ा है। हमें पूर्ण आशा और दृढ़ विश्वास है कि जनता इस कार्य को सफल बनायेगी।

एक यूरोपियन.

(ले० - श्री प्रो० [illegible] जी.

गुरुकुल का वातावरण बहुत शान्ति और मस्ती का वातावरण है ; भारत की सभ्यता में भी शान्ति और मस्ती मुख्य है । ऐसे वातावरण में जब डा. ताम्बे जैसा व्यक्ति आता है तो उस का औरों से भेद स्पष्ट लगता है । मैं तो उस वृद्ध शरीर में इतनी स्फूर्ति देख कर हैरान होता था । काम करने के लिये हर समय कटिबद्ध एवं अनथक परिश्रम करने वाले डॉक्टर ताम्बे जी की याद कर के आज भी तबीयत में जोश पैदा होता है । मैं तो जब उन को काम करते देखता था तो दिल ही दिल में शर्मिन्दा होता था कि ज्यादा जवान होते हुए भी मैं उन से कम काम करता हूं ।

वे दुनिया से Retire होकर यहां आए थे। Retire होकर के तो लोग आराम किया करते हैं – मगर यह आराम करने का विचित्र ढंग था। प्रोफेसर सेवाराम जी फेरवानी, जो मुझ से पहले यहां English के Proffessor थे और जिन्होंने गुरुकुल की जी जान से सेवा की - एक बार कहते थे कि Retire होने से तो मैं यह अर्थ लेता हूं कि नया Tyre लग गया। जैसे नये Tyre के लगने से गाड़ी खूब तेज चलती है, ऐसे ही डॉक्टर ताम्बे जी को मानो नया Tyre लग गया था, और वे बड़ी तेजी से हर समय दौड़-धूप करते नजर आते थे। एक दिन मुझे दोपहर के भोजन के बाद उन से कुछ काम पड़ा। पहले तो मैं झिझका, मैंने सोचा - यह समय आराम का है, इस समय उन के पास जाना उन के आराम में खलल डालना होगा। फिर मैंने सोचा - चुपके से जाकर देख आता हूं, अगर आराम कर रहे होंगे तो न बुलाऊंगा। जाकर देखा तो ठका ठक कोई चिट्ठी Type कर रहे हैं। बहुत हैरान हुआ कि यह शख्स किस मिट्टी का बना हुआ है। मुस्तैदी उन की हरेक हरकत से टपकती थी।

उन को हिन्दी का ज्ञान साधारण था। कभी-कभी वे मज़ेदार अशुद्धियां करते थे। एक बार उन को एक चतुर आदमी से वास्ता पड़ा। बातचीत में आप ने उस से कहा, "बदमाशी में मैं तुम से कम नहीं हूं", उन का मतलब केवल इतना था कि मैं तुम से कम चालाक नहीं हूँ।

काम करते समय वे इतने उग्र होते थे कि उन से डर लगता था। एक दिन मैं अपने पुत्र (विष्णु) की पट्टी कराने गया - उस के एक कान के पास एक फोड़े को उन्होंने चीरा दिया था। दूसरे दिन पट्टी अपने स्थान से ज़रा हिली हुई थी - क्योंकि बच्चे आखिर बच्चे ही होते हैं, हज़ार कहो 'आराम करो', पर नहीं मानते, आराम करें भी कैसे, जब कि आयु ही खेल कूद और शरारत की हुई। उछलते-खेलते हुए पट्टी अपने स्थान से हिल गई थी। उस दिन मुझ को जो डाँट मिली, वह भूल नहीं सकती, बहुत तेज़ डाँट थी। मैं अपने बच्चों के साथ कड़ा सलूक करने के लिये प्रसिद्ध हूं, मगर उस दिन मुझे ये शब्द सुनने को मिले - आप अपने बच्चों पर कोई Control नहीं रखते। अगर घाव खराब हो गया तो उस के लिये कौन ज़िम्मेवार होगा - इत्यादि। विद्यार्थी भी पास ही खड़े थे, इस

से मुझे कष्ट हुआ, और मैं बहुत ही शर्मिन्दा हुआ। अगर मुझे एकान्त में, जहां विद्यार्थी न होते, वे इस से भी कड़े वचन बोलते, तो मैं परवाह न करता - क्योंकि वे बुजुर्ग थे और वे मुझे डांट सकते थे। उन की डांट का केवल एक प्रयोजन था कि मैं अपने लड़के का और ज्यादा ध्यान रक्खूं, ताकि घाव कहीं खराब न हो जाय।

कार्य के समय इतना उग्र होते हुए भी जब कभी वे चलते - चलते रास्ते में मिलते, तो सदैव हँस कर मिलते। वस्तुत: वे मालिक और बालक दोनों थे। काम करते या कराते समय वे मालिक के रूप में होते थे- पर मिलते समय बालक की तरह सरल चित्त से हंसते हुए मिलते थे। जहां वे सख्त नियन्त्रणवादी (strict disciplinarian) थे, वहां सरल-स्वभाव, स्पष्टवक्ता, हँसमुख और मिलनसार भी थे। यह मेल बड़ा दुर्लभ है। या तो मनुष्य बहुत ही कड़े होते हैं - या बिल्कुल नरम। मगर वे वज्र भी थे और कुसुम भी। वज्र अपनी Duty के करने में और कुसुम हँसते मुख से सब के साथ मिलने में।

सफाई, समय-पालन, दोषों से असन्तोष,

तीव्र दृष्टि, परिस्थिति में खराबी को दूर करने के लिये आकुलता, चुस्ती, फुर्ती आदि जो भी अच्छी बातें हम योरुप में प्रायः पाते हैं, वे उन के अन्दर कूट कूट कर भरी हुई थीं। वे जन्म से हिन्दुस्तानी थे, मगर गुण-कर्म-स्वभाव से वे एक उत्तम प्रकार के European थे। महात्मा गांधी जी भी मुझे स्वभाव से European लगते हैं - यद्यपि उन की लंगोटी लोगों को धोखे में डाल देती है। इतनी मुस्तैदी, समय पालन, सफाई, सङ्गठन शक्ति, अनथक परिश्रम करने की शक्ति इत्यादि गुण Europe में हम भारतवर्ष की अपेक्षा अधिक पाते हैं।

उन को किसी से द्वेष नहीं था - पर वे दोषों को देखने में तीव्र और बताने में स्पष्ट थे। इस लिये कई लोग उन के विरुद्ध हो गये और समझने लगे कि यह हमारा दुश्मन है। वस्तुतः वे किसी के दुश्मन न थे। हाँ, यह उन की तीव्र इच्छा थी कि गुरुकुल आयुर्वेदिक कॉलेज एक Bogus College न हो, पर First class college हो। इस इच्छा को पूरा करने के लिये

उन्होंने जो Steps लिये, वे कई महानुभावों को बुरे लगे। उन के, दोषों को दूर करने के ढंग में दोष हो सकता है, मगर उन की नीयत बिल्कुल साफ़ थी।

उन की कार्य-क्षमता Efficiency और Organising Capacity इतनी ज़बर्दस्त थी कि हमें हैरान करती थी। जब उन की आज्ञा से कहीं बग़ीचे लग रहे थे, और कहीं तार के खम्भे और कहीं नल, तो ऐसा प्रतीत होता था कि शायद यही गुरुकुल के Governor हैं। बाहर से कोई बड़ा पदाधिकारी आता था तो उन को देख कर, उन से मिल कर और उन के कार्य-विस्तार का निरीक्षण कर के बहुत प्रभावित होता था।

आचार्य देवशर्मा जी के लिये उन के दिल में बहुत आदर था। उन से बात करते हुए एक दिन उन्होंने इच्छा जाहिर की कि मैं अपने खर्च से एक विशाल Dissection Hall बनवाना चाहता हूं - पर एक बात है कि उस पर मेरा नाम न लिखा जाय। बात मामूली सी है पर भाव बहुत गहरा और महत्त्वपूर्ण है। उस छोटी सी बात से हमें उस वीर आत्मा के अन्तस्तल की झाँकी मिलती है। दिव्य-शक्ति से सम्पन्न वह लोकैषणा के लिये कुछ नहीं करना चाहते थे। वह तो सब सेवा

अपने प्रभु को रिझाने के लिये करते थे। उसी को प्रसन्न करने के लिये अनथक सेवा करते हुए वे उस प्रभु की गोद में जा सोये। उस स्वर्गीय विश्राम को उन्होंने उपलब्ध किया - जिस के कि वे पूरे हकदार थे। आज वह वीर आत्मा हमारे में नहीं है - मगर उस की स्मृति हमारे लिये सदा ताज़ी है और हमें स्फूर्ति से अपने कर्त्तव्य को करने के लिये प्रेरित करती है।

पञ्चपुरी का महन्त

(ले०- श्री देसराज अरोरा)

His Strength was the strength of ten
Because his heart was pure.
... Sir Galahad.

"उस में १० आदमियों की शक्ति थी,
क्योंकि उस का हृदय पवित्र था।"
- सर गैलहैड।

"राजा कालस्य कारणम्"
- महाभारत।

× × × × ×

सन् १९३७! — मधुर-प्रभावशाली पुरातन स्मृति —
मार्च का सुहावना मास।

गुरुकुल विश्वविद्यालय का विशाल जनसमुदाय से खचाखच भरा हुआ वार्षिक मेला।

रात्रि का समय था — कोई १० बजे। विद्युत् पंक्तियाँ मानों किसी के स्वागत में अपने प्रकाशपुञ्जों को अपने में बाँधे न रख सकने के कारण उमड़ कर बाहिर फूटी सी पड़ती थीं —

हठात् हमारे ~~सभा~~ मेला-मण्डप में गंभीर निस्तब्धता।

एक दीर्घकाय - विशाल नेत्र - विकार पूर्ण मुख मुद्रा - विशाल मस्तक - आनन्द पूर्ण मुस्कान - अनुभव का खजाना - एक दिव्य पुरुष

का आगमन। उनका वह भव्य पूर्ण, गंभीर मराठी भाषा के शब्दों से संमिश्रित - हास्य में मधुर गुजराती और होठों पर मन्द मुस्कान कर देने वाला व्यवहार!

अद्भुत थी वह शक्ति। सौभाग्यवती थी हैं वह प्रफुल्ल कृति - जिस पर वह मानवदेह में माता का दिलचित्त अवतीर्ण हुआ था - <u>दैवसंयोग</u>

× × ×

आज लगभग ७ साल हुए - हमारे बीच में वह गुरुकुल के क्षेत्र का पूर्ण श्री डा. ताम्बे हमें उपस्थित थे। किन्तु सहसा उस दिव्य ज्योति की पुकार हुई और वह पुरुष भी उसी दिव्य ज्योति में अपने को विलीन कर गया।

× × ×

श्री गोपाल रामचन्द्र ताम्बे एक प्रतिष्ठित तथा चिकित्सक और शल्यतन्त्र के विशेष वेत्ता थे। गुरुकुल में उनका आगमन दैववशात् - हमारे संयोग से अकस्मात् हुआ।

किन्तु अकस्मात् संयोग से प्राप्त वस्तु का वियोग भी तद्रूप ही संभावित है।

किन्तु वह था एक दिव्य पुरुष - जो हम सब कुल-वासियों के दिलों पर ऐसी गहरी छाप छोड़ गया - जो इस जीवन के साथ तक - अमर रह जायेगी। इस चोले के साथ वह एक रोगाई है अपना पूरा भार भरे रंग छोड़ गये हैं। उनका स्थान दूसरी वस्तु न ले सकेगी -

× × ×

(i) हरिद्वार और श्री ग. ताम्बे

हरिद्वार में – उनके अतिरिक्त किन्तु सम्पूर्ण जीवन के सबसे महत्वपूर्ण भाग में उनका आगमन और अवतरण सचमुच एक अनहोनी घटना थी। किसे इस बात का भान भी था कि हरद्वार के साथ हमेशा – हर के द्वार पर आना-जाना हमेशा पास आना न था – क्योंकि वह तो यथार्थ ही हर के द्वार की कुंजी साथ लेकर आए थे।

किन्तु सौभाग्यशील हैं हम जो कि हर के द्वार के 'मार्ग में' स्थित हैं – हर के द्वार पर पहुँचे मार्ग, उनके मार्ग स्थित बन्धुओं को भी उन्होंने अपना सन्देश सुनाया।

इसे कहते हैं विधि विधान!!!

× × × × ×

ii पंचपुरी का महत्व –

प्रत्येक तत्व के अद्भुत घटकों का सम्मिश्रण शरीर ही किसी भी आकार को प्राप्त होता है।

पंचपुरी (पांच अक्षर वाले पुरों) में आकर और स्वयं भी उस विजीवि मुक्ति से – देह के गंभीर प्राकृतिक और विज्ञान तत्व को समझ लेना श्री ग. ताम्बे जैसे वर्णनीय व्यक्तियों का ही काम था।

कौन जानता था कि 'पंचपुरी' शब्द से 'मिलाने' कर श्री. शास्त्री जी स्वयं भी शिष्यों 'पंचतत्व' को उपदेश ...

गुरुकुलीय जीवन की महत्वपूर्ण घटनायें

श्री उ. ताम्बे उन व्यक्तियों में से प्रमुख थे- जो इस सिद्धान्त के उदाहरण थे कि —

"गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी सुसम्भ्रमाद्यस्य'

"कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः"

"स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।"

उन्होंने अपने को इस योग्य बनाया कि वे स्वयं भी अपने जीवन के उन आगन्तुक छात्रों को कर्मनिष्ठता का पाठ पढ़ा सके।

× × ×

१ <u>कर्मनिष्ठता</u>

श्री ताम्बे जी का यह प्रधानतम गुण था। उन्होंने प्राकृतिक सर्व विषयों का अत्यन्त सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह निश्चित कर ली थी कि लोगों के सफल जीवन उन्हीं को उपलब्ध होता है जो प्रथम कि कर्मनिष्ठ- कर्मठ और कर्मधुर होता है। 'खाली मन शैतान का घर है" इस का पूर्ण अध्ययन उन्होंने किया था। अतः आप शास्त्र और सार्वजनिक तथा लौकिक, धार्मिक व शासन तन्त्र का भार सहन सदा कर्म- कार्य पूर्ण रहता था। कभी उन्हें किसी ने खाली बैठे नहीं देखा। वे जानते थे कि

'Struggle is life.
संघर्ष ही जीवन है।"

इस छोटी सी घटना याद हो आती है —

'उन्हें प्रति दिन सायंकाल को मैंने अपनी आंखों से गुरुकुल की वानस्पतिक वाटिका (Botanical Garden) में अपने Coat की जेब में से छोटी कैंची निकाल कर छोटे-छोटे पौधों के आस पास - बड़े - टेढ़े - मेढ़े पत्तों को - इधर उधर उच्छृंखल बढ़ रही टहनियों को क्रम में करने के लिए काट २ करते देखा है।"

घटना साधारण है और है एक छोटी सी बात, परन्तु यह छोटी घटना थी उनके सम्पूर्ण जीवन की कुंजी है।

२ नियमितता- (Regularity + Punctuality) —

जो व्यक्ति अपनी सन्तान को उच्च पाठ पढ़ाना चाहता है - उच्च शिक्षा देना चाहता है ताकि सत्प्रकृति का मार्ग में उड़ान ले - उसके लिए आवश्यक हो जाता है कि वह अपने जीवन को उन सम्पूर्ण परिस्थितियों और कठिनाइयों के सांचे में ढाले।

हम लोग गुरुकुल के आनन्दमय और शिक्षामय वातावरण में रहने वाले विद्यार्थियों और कर्मचारियों तथा अन्य कुलवासियों से वह ~~[illegible]~~ करते जान बूझ जाता था। अर्थात नियम का ऐसा पक्का कि क्या मजाल थी कि कभी १ सैकण्ड अपने समय से इधर-उधर भी हो जाय। सम्भव वह बूढ़ा कुलपति दिखते जाना था।

He was the man,

who made impossible possible

Without any help of any person.

वे नहीं जानते थे कि 'असम्भव' शब्द भी संसार में होता है ? और यह तथ्य है कि महापुरुषों की Dictionary में 'असम्भव' को स्थान नहीं होता। Ideas rule the world ये वे ~~[illegible]~~ सदा पूर्ण होते हैं।

गुरुकुल के आयुर्वेदिक विद्यालय के सम्बन्ध में जो जो सुझाव अपेक्षित थे - वे सब उन्होंने ६-७ मास के अल्पकाल में ही बिना किसी की सहायता के कर दिखाए।

यह है <u>तेजस्वियों की तेजस्विता।।।</u>

तेजस्वी वही है जो अपने अधिकारी वर्ग की उपेक्षा होते हुए भी सब कुछ कर दिखाए। अपने को सत्य कर दिखाए अपने पीछे अतएव सब को चाहे मुख मोड़ दें।

सत्य में - वह एक वीर सेना नायक की भाँति नायक था। वह किसी से दबने वाला न था। एक सत्य सिद्धान्त को मान कर स्वयं आजीवन डटने वाला था।

× × ×

आदर्श गुरु - (Ideal Teacher)

मैं यह निःसंकोच कह सकता हूँ कि मैं धन्य हूँ कि क्योंकि मैं मातृमान पितृमान } और <u>आचार्यवान</u> यथार्थ में बन गया हूँ।

आदर्श गुरु संसार में सुलभ होता है किन्तु सौभाग्यवश हमें वह आदर्श गुरु भी मिल गया था- पर वह [illegible]

उन आदर्श गुरु के दो प्रधान गुण थे -

१. "राजा कालस्य कारणम् ।"

संस्था को गुरु स्वयं बदल डालो। तपस्वी · विवेकी संस्था बनो और ऋषियों के हाथ - उनकी इच्छा ही अपने स्वभावानुसार बना दो।

२. सदा कर्मशील रहो। बिना कर्म के धर्म नहीं, बिना कर्म के जीवन नहीं। जीवन तो संघर्ष से होगा, संघर्ष कर्म करने से ही होगा। अत: वैदिक शब्दों में इसका उपदेश इन्होंने दिया था कि -

"चरैवेति चरैवेति

पुष्पिण्यौ चरतो जंघे

भूष्णुरात्मा फलग्रहि: ॥"

× × ×

<u>हमारा कर्त्तव्य</u> :— हम लोग आदर्शवादी हों हमारा शिक्षा संस्था को आदर्शवाद (Idealism) का पथप्रदर्शक बनाना है। अत: हमारे हृदय में स्वभावत: हो जाता है कि हम किसी महापुरुष के प्रति श्रद्धाञ्जलि किस भांति निबाहें। किन्तु मैं हम से स्वयं पूछना चाहिए - अपने दिल से कि हमने श्री ताम्बे जी के जीवन में से क्या उनको ग्रहण किया है? अथवा क्या कर्त्तव्य उनके प्रति निभाया है?

जहां गुरुकुल के अधिकारी यह दोष देते हैं कि विद्यार्थियों के स्वभाव में तथा श्री डा. ताम्बे जी का सहयोग देने में मन्द न था, वहां पर वे लोग यह मानते थे कि भूल कर बैठते हैं। श्री ताम्बे साहब स्वयं प्राय: विद्यार्थियों से कहा करते थे कि —

" तुममें आलस्य का नाम तक न होना चाहिए अधिकारियों में तुम्हें दिल से आयुर्वेद कालिज की सेवा करनी तथा इसे फलानुकूलता

देखना चाहता हूं, परन्तु किसी भी अधिकारी की ओर से मुझे सहायता नहीं मिल रही है"

उपर्युक्त पत्र विचार में प्रत्येक का (?) हम सब कुलवासियों का कर्तव्य है कि उनके विचार होने पर स्वयं चलें!

हमें श्री ताम्बे जी से यह सीखना चाहिये कि —

"मूर्खविज्ञातलोकस्य हीयते सा एकता।"

आज आयुर्वेद जगत में "आयुर्वेद महाविद्यालय" स्थापित नहीं चलाया जाता है तो स्वयं अपनी पुरानी प्रतिभा के लाभ से कृतियों को खोल देने वाला स्वयं एक दिन सेवाश्रम जैसी तरह खोल जाता है

श्री ताम्बे के बाद 'सेवाश्रम' दिन व दिन जीर्ण-शीर्ण होता जा रहा है मुझे तो पूर्ण आशा है कि ऐसी स्थिति रही तो १ वर्ष में यह भी खण्डहर स्वरूप रहकर उसके प्राण पखेरू उड़ जायेंगे - हमारा प्रेम - कुलवासियों का मन कितनी है ? — पर हम उनको भूल गये हैं

शोक और आश्चर्य का विषय है कि 'सेवाश्रम' जैसी स्थान भी अपने मालिक के वियोग में विरही बनकर नष्ट-भ्रष्ट हो रही है किन्तु वाह रे! पुरुष! तू कितना स्वार्थी है न तू किसी को पूछता है न किसी को ऊंची निगाह पर देखा जाता है न स्वयं कुछ करने की कोशिश करता है और नहीं और की उन्नति देखना। तू खुश ही हो सकता है जहां तक अपनी २ जेबें गरम करते हो मतलब हो वहां पर आदर किया तो स्वयं ही शरमाकर मुंह दबाकर भाग खड़ा होता है -

गुरुकुलवासियो! अब भी नहीं चेते! तो कब चेतोगे?

कर्मवीर

डाक्टर ताम्बे

(ले०- श्री सत्यव्रत द्वारा)

कई दिनों से हमारा गुरुकुल आयुर्वेद-महाविद्यालय के लिये एक सुयोग्य, कर्मप्रवण सिविल सर्जन की आवश्यकता अनुभव कर रहा था। वस्तुतः लौकिक संसार यत्र-तत्र-सर्वत्रैव विज्ञापनबाज़ियों से अपनी आवश्यकता-पूर्ति कर लिया करता है पर क्या आध्यात्मिक जगत् भी इसी तरह ही काम निकाला करता है या कोई अन्य तरीका है? हमारा जगत् फ़िज़ूल की विज्ञापनबाज़ी को हमेशा नापसन्द करता है। जब कि भावना

ही एकमात्र सफल साधन हैं। आवश्यकता का अनुभव भावनामय संसार में मन्द गति से प्रवेश कर ही रहा था कि सुदूर दक्षिण महाराष्ट्र से एक अपरिचित व्यक्ति ने गुरुकुल को अपनी सुमञ्जुल चरण-ध्वनि से गुञ्जायमान कर दिया। असल में भगवान् अपने भक्तों की करुणासुरवद वाणी को सुनकर उन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में कदाचिदपि आगा पीछा नहीं करते।

वह बूढ़ा परन्तु नौजवानों को भी अपनी कार्यकुशलता से आश्चर्योन्मुग्ध करने वाला अपने साथ एक जबरदस्त सन्देश को लेकर गुरुकुल में आया था। उसका विशाल भालपट्ट, चमकीली आंखें, कमानीदार मूंछें उपरिवर्ती ओष्ठ पर चमकते हुवे सघन शुभ्र बाल, सुन्दर गठीला बदन, ये सब उस के ४० साल के अनथक परिश्रम की स्मृति की झांकी कराते थे।

अभी दो दिन हुवे होंगे कि आप को आयुर्वेद-महाविद्यालय के प्रिंसिपल की पदवी मिली + एवं एक अनुपम, अभूतपूर्व, नूतन जोशोख़-रोश के साथ आयुर्वेद महाविद्यालय उन्नति के शिखर पर आरूढ होने लगा। कौन जानता था कि गुरुकुल

में इतनी जल्दी परिवर्तन होंगे। हम तो अभी कॉलिज के प्रथम वर्ष में प्रविष्ट हुये थे इस लिए हमारे लिये सब कुछ अपरिचित था। गुरुकुल में कुछ अनहोनी उदासी छायी हुई थी, काले बादलों की घनघोर घटा घिर आयी थी। वायुमंडल बिलकुल शान्त था। पर जवानी में ऐसी शान्ति भला किस काम की! हमारे नवीन आदरणीय प्रिन्सिपल के आने के साथ ही सब देवता प्रसन्न हो गये। आश्रम के पश्चिम पार्श्व में एक श्रद्धानन्द सेवाश्रम स्थापित हुआ, जहां पर शल्यक्रियाभवन आपकी उदार दानशीलता का अचानक परिचय दे रहा है। प्रिय भारतवर्ष की प्राचीन ग्रामीण जनता अपने रोगों व घावों को भरने के लिये प्रतिदिन झुण्डों में आया करती एवं उन ८० साल के वृद्ध पितामह को विविध आशीर्वाद सूचक शब्द कहकर अपनी राह पकड़ती थी। आप ही की कृपा से गुरुकुल की वीरान ऊसर भूमि में अब सर्वत्र तरुवृन्द लहलहा रहे हैं। उद्यान-वाटिकायें अब नयनयुगलों को प्रसन्नता देती हैं। आयुर्वेद महाविद्यालय के विद्यार्थी भी अपने सुयोग्य प्रोफेसर के कारण प्रसन्न हैं। इतने से ही श्री डाक्टर साहब सन्तुष्ट

न हुवे । एवं आपने आयुर्वेद महाविद्यालय में एक पुस्तकालय भी खोला, जिस में आयुर्वेद व डाक्टरी सम्बन्धी अनेकों ग्रन्थ रखे गये । उन में से कई बहुमूल्य ग्रन्थ आप के ही द्वारा दान दिये गये हैं । और देखिये, प्रात काल के ५ बजे से लेकर सायकाल के ८ बजे तक कोई भी व्यक्ति उन का श्रद्धानन्द सेवाश्रम में प्रत्यक्ष दर्शन कर सकता था । आयुर्वेद के विद्यार्थी उन की अविराम गति से—बिना परवाह के, प्रस्वेद की जरा भी परवाह न करते हुवे, सोत्साह, श्रद्धापूर्वक चिकित्सा करने की कार्यप्रणाली को देखकर दंग रह जाते थे उन के द्वारा किये जाते हुवे किसी भी ओप्रेशन को देखकर गेलरी में बैठे हुवे आयुर्वेद के विद्यार्थी दांतो तले अंगुली दबाते थे एवं आश्चर्य भरी निगाह से उन की ओर निहारते थे । उन के लिये हृदयों में श्रद्धा का भाव उमड़ पहुंला था । आतुरालय में पड़े हुवे ब्रह्मचारी सोते हुवे भी आप को दुआ दिया करते थे । उन का गम्भीर एवं भरा हुवा मुखड़ा सूर्य की रश्मियों में द्वितीय सूर्य की आभा झलकाता था । कोट-पैन्ट एवं नेकटाई आदि उन की चुस्ती में एवं स्फूर्ति में सहायता किया करते थे ।

इस प्रकार स्वल्प काल में ही गुरुकुल की

आयुर्वेद

सर्वाङ्गीण उन्नति करने वाला, संसार में गुरुकुल की शान को बढ़ाने वाला, प्रत्येक से गाम्भीर्य एवं माधुर्य के साथ व्यवहार करने वाला, स्वामी श्री श्रद्धानन्द जी की 'स्पिरिट' को लेकर अदम्य गति एवं उत्साह पूर्वक काम करने वाला वह गुरुकुल आयुर्वेद-महाविद्यालय का लगन वाला प्रिंसिपल दिन निकलते ही उन अगाध तारक मण्डलियों में अन्यत्र छिप गया। आज उस चलती फिरती मूर्तिमंत तेजस्विनी विभूति का सूक्ष्म स्वरूप स्वर्ग की यात्रा करता हुआ भी यथा: शरीर को इस लोक में ही छोड़ गया है। उस के बिना नयनाभिराम वाटिकायें अपने पादपवृन्दों के प्रसूनों के रूप में निरन्तर आंसू टपकाया करती हैं। श्रद्धानन्द-सेवाश्रम अपने अलभ्य एवं उदार सेवक के बिना रुग्णों के करुण क्रन्दन के रूप में अविरल गति से अश्रुधारायें बहाया करता है। आज सारा गुरुकुल अपने अनोखे नायक के खो जाने से व्याकुल हो रहा है। पपीहे के बच्चे अद्यावधि अपने प्रियतम के न आने से चिन्तित हुये हुये व्यर्थ में घोंसलों में से टकटकी निहार रहे हैं। आज मैं उस अविरल गति से सत्वर रममाण,

चमकती विद्युत की न्याई स्फूर्तिमान् अनोखी विभूति वाले मुनीश चरणसरोजों में उपहार के रूप मे तुच्छ सी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने का प्रयास कर रहा हूं । परमात्मा मेरे प्रयास को सफल करे । परम पिता परमात्मा हमारे चिन्तित मनों में को सान्त्वना प्रदान करे, एवं हम को सद्बुद्धि देकर अनुगृहीत करे । ओ३म् शम् ॥

मेरा स्वप्न

(ले०- श्री सनत्कुमार)

गरमियों के दिन थे। सूर्य की किरणें तेजी से पृथ्वीतल पर पड़ रही थीं, मानो पृथ्वीतल को भस्मसात् कर देना चाहती हों। ऐसे समय में हम मध्याह्न का भोजन करके अपने कमरे में विश्राम ही कर रहे थे कि इतने में लड्डुआ दौड़ा हुआ आया और कहने लगा कि आयुर्वेद के विद्यार्थियों को ठाकुर जी ने out door में बुलाया है। लड्डुए की यह बात सुनकर कुछ तो यह कहने लगे कि इतनी कड़ी धूप में out door कौन जाय, कुछ ने कहा कि ठाकुर जी ने बुलाया है, इसलिए जाना ही होगा, कभी वे रुष्ट न हो जांय। खैर इसप्रकार की अनेक बातें हो रही थीं कि तो मैंने सोचा कि देख तो लूं कि ठाकुर जी जा भी रहे हैं कि नहीं। यह सोचकर ज्योंही मैं अपने कमरे से बाहर निकला और outdoor की सड़क पर नजर डाली तो देखता क्या हूं कि ठाकुर जी बड़ी शीघ्रता से हस्पताल की ओर जा रहे हैं। उनको जाते हुए देखकर मैंने

मिलने के लिए शीघ्रता से कदम बढ़ाए।

ज्योंही मैं उनके पास पहुँचा, उन्होंने पूछा कि क्या आयुर्वेद के विद्यार्थी आ रहे हैं कि नहीं। मैंने कुछ सोचकर कहा कि आ रहे हैं। उस समय उनको देखकर मेरे दिल में अनेक भाव उठने लगे, अरे हम नौजवान इस गर्मी में आने के लिए आनाकानी कर रहे हैं और इनके शरीर से पसीने की धाराएं बह रही हैं और कपड़े पसीने से तरबतर हो रहे हैं तो भी ये बड़ी खुशी से कामपर जा रहे हैं। उनको देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि मानो गरमी का अनुभव ही नहीं कर रहे हैं। शायद वृद्ध पुरुषों को गरमी का अनुभव भी न होता हो; अरे ऐसी तो बात नहीं, गरमी तो सबके लिए एक जैसी है पर उत्साह और लगनवाले पुरुष को गरमी कहां?

एक छोटी सी बात से इनके लगन तथा उत्साह का हरएक अनुमान कर सकता है कि इतने ज्ञान से युक्त होते हुए भी आयुर्वेद को पढ़ाने की धुन सवार है। कभी तो सुश्रुत और कभी चरक हाथ में दिखाई पड़ता है। वास्तव में इनका सारा जीवन ही उत्साही आदर्श था।

इन बातों को जब मैं सोच ही रहा था कि ठाकुर जी ने फिर कहा कि विद्यार्थी तो आते हुए प्रतीत नहीं होते। इसे सुनकर पहले तो मैं चुप हो गया और फिर कुछ सोचकर कहने लगा-

कि शायद सब विद्यार्थी नहीं आएंगे, क्योंकि अभी सब भोजन करने आए हैं। यह सुनकर पहले तो उनके चेहरे पर निराशा का भाव आया और फिर अपने भाव को छिपाते हुए कहने लगे कि मैं तो अभी पूरा भोजन भी करके नहीं आया हूं। जब मैं तुम्हारी अवस्था में था तो हाथ पर रोटी रखकर खाते २ रोगियों को देखने चला जाया करता था। आयुर्वेद के विद्यार्थियों को विद्यार्थी जीवन में सुख कहां? उनको तो २४ घन्टे काम पर तत्पर रहना चाहिए। "सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतो सुखम्", यह प्रत्येक विद्यार्थी के जीवन में चरितार्थ हो जाना चाहिए। मैं तो गुरुकुल में ये विचार लेकर आया हूं कि जो कुछ थोड़े से दिन मेरे जीवन के बचे हैं उन थोड़े से दिनों में मैंने जो कुछ अपने जीवन में सीखा है उसे आप आयुर्वेद के विद्यार्थियों को सिखा दूं। मैं तो दिनरात यही सोचा करता हूं कि किसप्रकार आयुर्वेद महाविद्यालय की उन्नति हो और किसप्रकार आयुर्वेद के विद्यार्थी योग्य बनें। मैं तो वह दिन देखना चाहता हूं जबकि मेरे पढ़ाए हुए विद्यार्थी मेरे सामने स्नातक बनें और उन स्नातकों में इतनी योग्यता हो कि उनकी योग्यता को देखकर बाहर का संसार दांतों तले अंगुली दबाए और किसी से प्रशंसा किए बिना न रहा जाय।"

यह कहकर वे चुप हो गए और फिर कुछ सोचकर मेरे सिर पर हाथ रखकर कहने लगे कि क्या मेरे डांटने से विद्यार्थी रुष्ट हो जाते हैं। सच कहता हूं कि मैं तो सब विद्यार्थियों को अपने

बच्चों के समान समझता हूं। जिसप्रकार पिता अपने लड़कों को सन्मार्ग पर चलाने के लिए प्रेम से समझाता है और कभी डांटता है उसीप्रकार मैं भी कभी २ डांट देता हूं। यदि मेरे डांटने से किसी भी दिल को कुछ दुःख पहुंचता है तो मैं यह भी छोड़ दूंगा।"

पूज्य आचार्य जी (Principal of medical-college) के आवेग को शान्त करने के लिए मेरे नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली और मैं अपने दिल में सोचने लगा कि अहो! कितने भाग्य से तो हमें इतने योग्य, पुरुषार्थी तथा निःस्वार्थ सेवा करने वाले मिले हैं – यदि हम अब भी उनसे कुछ भी विद्यालाभ न करें, तो हम जैसा अभागा हो कौन होगा। यह था हमारे आचार्य का सच्चा प्रेम और सच्ची लगन।

इन सब बातों को सोचकर मेरा हृदय द्रवित होकर बाहर निकल रहा था इतने में डाक्टर जी ने मेरी ओर देखकर कहा – "क्यों? रो रहे हो क्या?"। मैंने एकदम अपने भावों को छिपाते हुए कहा कि नहीं जी मेरी आंख में कुछ गिर गया है और इसी कारण मेरी आंखों से पानी निकल रहा है। यह कहकर मैंने अपनी जेब से रुमाल निकालकर आंख पोंछना प्रारम्भ किया। डाक्टर जी ने आंख में कुछ पड़ा हुआ समझकर कहा अच्छा Hospital में चलकर निकाल दूंगा।

इस तरह की बातों के सिलसिले में हस्पताल पहुंच गए। वहां पर पहुंच कर डाक्टर जी ने मुझे पुकारा कि आओ जो कुछ तुम्हारी आंखों में गिर गया था उसे निकाल दूं। मैंने कहा – डाक्टर जी वह तो शायद निकल गया है। वे बड़े आश्चर्य से बोले-

अच्छा आओ, देख तो लूं - जो कुछ होगा निकाल दूंगा। मैं उनके पास पहुंचा। उन्होंने बड़े आग्रह से मुझे अपने पास बैठा लिया और मेरी पलक उघाड़ देखना ही चाहते थे कि मेरी आंख खुल गई और मैंने देखा कि ज़बर्दस्त हवा के झोंके से मेरी नींद खुल गई थी। मैं शायद स्वप्न देख रहा था।

वह धन्वन्तरि...

(श्री सत्यभूषण 'योगी')

अर्ध निशा है सां सां की
आवाज़ सुनाई पड़ती है
नर क्या मृग सब सोए हैं, औ'
सोई पीड़ित धरती है

कौन अरे देखो वह सुन्दर
मोहन सात्विक भाव लिये है
दृढ़ निश्चय से गर्वित मद से
भाती बांकी चाल लिये है

चला जा रहा निर्जन पथ पर
मिटने का अरमान लिये है
श्वेत केशमय वृद्ध देह में
यौवन का तूफान लिए है

अविश्रम काम करता है फिर भी
कुछ भी नहीं थकान इसे है
यह धन्वन्तरि जान डाल दे
मुर्दों में वरदान इसे है

पड़ा हुआ था रोगी रोता।

ईश्वर को हो कोरा रहा [illegible]

उस मायावी पर उतार हा,

वह आ[illegible] सब देख रहा था

आयुर्वेद

अरे कहां है दया, क्रूरता
से सारा संसार भरा है
क्रूर नियन्ता के इंगित से
जीते जी यह मरा पड़ा है

ईश्वर है यह झूठ सरासर
है तो अत्याचार-भरा है
अन्धा बहरा गूंगा लूला
लंगड़ा औ' अविचार भरा है

तुम कहते हो पिता, पिताओं
के ऐसे हैं पुत्र कहां रे
तड़पा तड़पा मारे हम [illegible]
बेदिल निष्ठुर नित्य अहा रे

उस पाषाण-हृदय की सत्ता
से भी अब इन्कार हमें है
यदि हो भी तो उसे भून देंगे
न विवेक विचार हमें है

आये तो वह जरा सामने
हमें सदा तड़पाने वाला
भक्षक बन कर झूठ मूठ ही
रक्षक हाय, कहाने वाला

मैं नास्तिक हूं, मुझे भले जग
दे लानत औ करे बहिष्कृत
मैं नास्तिक हूं मुझे न भय है
उस का जो केवल है कल्पित

अरे, यहां अन्धेर मचा है
प्रेम कहां है, न्याय कहां है !
इस अन्धेर नगर से बचने
का कुछ हाय, उपाय कहां है

यह जड़ प्रकृति का चक्कर है
इस में पिस पिस मरना होगा
आंखों में आंसू हो फिर भी
केवल कृत्रिम हंसना होगा

नाना रोग भीति चिन्ताओं
से पीड़ित है प्रतिपल मानव
घूम रहे हैं उसे हड़पने
निशि दिन भीषण निर्दय दानव

कसक-वेदना की तड़पन की
यह जीवन है एक कहानी
हाय, न कोई रक्षक, चलती
है अन्धे विधि की मनमानी

अरे, धांधली ही सारे इस
जग में मची हुई भयकारी
इस में कुचली अनिश जा रही
बेबस मानवता बेचारी

हम रोते हैं रो सकते हैं
हाय, प्रकृति! जड़ निष्ठुर बेदिल
हम को पीस रही हो प्रमुदित
मूक मौन सहते हम बेकल

अच्छा मूंद पड़ूं आंखें अब
जो सिर पर आता है आए
घूम रहे यमदूत हाथ में
लेकर डंडे टाँपें लाँपें

हम लाचार हमें सहना है
जो करता है क्रूर नियन्ता
नहीं नियन्ता किन्तु जगत का
पत्थर दिल वह निर्दय हन्ता

पड़ा हुआ था रोगी रोता
यों ईश्वर को कोस रहा था
उस मायावी पर उतार हा
वह अपना सब रोष रहा था

धीरे से उस के मस्तक पर
किस ने मृदु कर अपना रक्खा
सब दुख द्वन्द्वों का निरास कर
स्वर्ग शान्ति का सपना रक्खा

क्या कहता वह धीरे धीरे
ईश्वर को मत कोसो प्यारे
सुन्दर मनहर विश्व बनाया
उस ने सुख हेतु हमारे

हम मानव अपने कर्मों से
अमृत को भी गरल बनाते
और असुन्दर सुन्दर को हा
शाश्वत को मरुथल कर जाते

इस नृशंस मानव ने लड़ लड़
कितने देश उजाड़ दिये हैं
कितने रसमय सुंदर मृदु वपु
जीते जी ही गाड़ दिये हैं

प्रेम भरी उस जगदम्बा ने
उसे सुखद यह जग दे डाला
अरे, असंयम करके मानव ने
नाना रोगों को पाला

उषा सुन्दरी आती है मुसकाती
दिशा दिशा हँस उठती
रंग बिरंगे फूलों से यह
विमुग्ध धरा पुलकित हो उठती

निर्झर झरते चंचल सरिएं
जीवन के मधु गीत सुनाती
निशा सलोनी प्रफुल्लित प्रजा-
दीप लिये नचती-सी आती

सभी सत्य है शिव सुन्दर है
सभी जगह है प्रेम बरसता
कण कण में दिख पड़ती उभर
स्वप्निल सुहागिन मधुर सरसता

इस दुनिया में सुख ही [illegible]
दुख हमने है आप बनाया
हमने ही निज वरदानों को
जानबूझ अभिशाप बनाया

रोगी ने आँखे खोली औ'
मूर्तिमान निज प्रभु को देखा
सहसा उस के सूखे मुख पर
खिंची हास्य की स्वर्णिम रेखा

रक्त धातु

(श्री क्षितीश)

'बच्चो! संसार के दृश्य सदा एक-से नहीं रहते हैं।'...

... पर रहने दो, वह बच्चों का पाठ था। किन्तु आज हम अपने पाठकों को रक्त रसायन का पाठ पढ़ाने जा रहे हैं, सम्भवत: उन्हें भी कभी छोटी श्रेणियों में पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ हो। यदि पढ़ ही लिया है-तो चलिये, पुनरावृत्ति ही सही। विज्ञान आपका विषय नहीं है, या आपको विज्ञान से भी रुचि नहीं है — यह बहाना, यदि लेखक को कभी फुरसत मिली तो सुन लेगा, पर फिलहाल तो इतनी फुरसत नज़र नहीं आती, इसलिये चित्त भी किसी तरह लो-मन मार कर, यह अत्याचार सहिये।

अब हम बिना कुछ अधिक कहे अपना पाठ शुरू करते हैं :—

× × ×

बहुत प्राचीन समय से, सब लोग तत्वों को श्रेणियों में विभक्त करने का प्रयत्न किया गया है। तत्वों का जो सर्वाधिक स्वाभाविक विभाजन है वह 'धातु' और 'अधातु' इन दो नामों से किया गया है। भौतिक गुणों में भेद होने के कारण ये दो पृथक् २ नाम रखे गये हैं। अधातुओं के विषय में तो हम फिर कभी कहेंगे, पर अभी प्रायः धातुओं के विषय में कहते हैं।

धातुओं के कुछ सामान्य गुण —

१. सब धातुएं ठोस होती हैं (पारद को छोड़ कर).

२. सब धातुओं की आपेक्षिक घनता उच्च होती है।

३. धातुओं में एक विशेष चमक होती है जिसे 'धात्विक चमक' कहते हैं।

४. ये ताप और विद्युत् की सुचालक होती हैं।

५. धातुएं प्रायः कठोर होती हैं, ताप देकर उन्हें द्रव बनाया जा सकता है। ये घन-वर्धनीय हैं — पीटकर पतरे बनाये जा सकते हैं।

६. किसी अम्ल से मिलकर ओषिद बनाती हैं और लवण तथा जल अम्ल से बनाता है।

इसी प्रकार अन्य भी अनेक गुण हैं, जिनको विस्तार-भयात्

हम यहीं पर छोड़ देते हैं।

. . .   .

जिस प्रकार सोना, चाँदी आदि धातुएँ हैं उसी प्रकार एक धातु है 'तांबा' — जिसे अंग्रेज़ी में copper कहते हैं। Copper शब्द लैटिन के Cuprum शब्द से निकला है, क्योंकि रोम के निवासियों ने इसे Cyprus द्वीप से प्राप्त किया था। प्राचीन लोगों को जिन जिन धातुओं का ज्ञान था उनमें से तांबा भी एक है। दक्षिण भारत में और हिमालय के कतिपय प्रदेशों में यह बहुतायत से पाया जाता है। यह अपनी स्वाभाविक दशा में भी पाया जाता है और अन्य धातुओं के साथ मिला हुआ भी।

किन कच्ची धातुओं से किस किस विधि के द्वारा यह निकाला जाता है — इसको प्रकरण से असंगत समझकर हम छोड़ देते हैं।

<u>ताम्र के गुण</u>— (भौतिक). इसका रंग चमकीला लाल सा होता है। यह अत्यन्त घनवर्धनीय है, सुतन्य है, और कठोर है। यह अन्य धातुओं के साथ मिलकर इन गुणों में परिवर्तन भी ला सकता है। यह ताप और विद्युत का सर्वोत्तम सुचालक है।

" — (रासायनिक). I. आर्द्र वायु और कार्बन डायोक्साइड के संसर्ग से इस पर जंग लग जाता है। ताप देने पर ताम्र ओक्साइड बनता है, जिसे साधारणतया नीला थोथा कहा जाता है।

II. गन्धकाम्ल और उदहरिकाम्ल धातु से ठण्डा होने पर कोई क्रिया नहीं करते, किन्तु गर्म करने पर गन्धकाम्ल इस पर क्रिया करता है और गन्धक द्विओषिद् बनाता है। नत्रिकाम्ल इस पर बहुत तेज़ी से क्रिया करता है और नत्रिक जारक होता है।

III. जस्त और लोहा इसको इसके लवणों से स्थानच्युत कर देते हैं।

ताम्र के उपयोग —

लोहे के बाद ताम्बा ही सबसे अधिक उपयोगी धातु है। घरेलू बर्तनों के और सिक्कों के बनाने में बहुत काम आता है। भारतवर्ष में तो ताम्बा और इसके धातुसंकर (Alloys) बहुत प्राचीन समय से प्रयुक्त होते आते हैं। बुद्ध की बृहदाकार विशाल-प्रतिमायें, मन्दिर कलश और भारत ~~के बनाने~~ के कई भिन्न भागों में बनने वाले अन्य बर्तन — इस बात का ही परिचायक होगा। अत्यन्त सुचालक होने के कारण वैद्युतिक उपकरणों और टेलीग्राफी की तारें इसी से बनती हैं।

धातु-संकर —

तांबे के अन्य धातुओं के साथ मिलने से जो धातुसंकर तैयार होते हैं वे अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण हैं। उनमें से कुछ के नाम निम्न हैं —

पीतल (तांबे की अपेक्षा अधिक कठोर और भंगुर), काँसा, बैल-मैटल, गन मैटल और जर्मन सिल्वर इत्यादि २।

X X X

इस प्रकार अकार्बनिक रसायन में यह धातु-विभाजक पाठ तो समाप्त हुआ। पर क्या इतने से ही लेखक को अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेनी चाहिये? नहीं। और सच पूछो तो, जब लेखक इस वैज्ञानिक प्रयोगशाला में से बाहर निकलकर अपने चारों ओर नजर दौड़ाता है — तो पाता है कि जिस प्रकार सब वैज्ञानिक तत्व 'धातु' और 'अधातु' के नाम से द्विधा विभक्त हैं, उसी प्रकार इस मानव समाज के वासी मनुष्य भी तो द्विधा-विभक्त हैं — 'धातु' और 'अधातु'। और फिर उसे याद हो आता है वह सारा का सारा पाठ जो उसने विद्यालय के अन्दर में बड़े मनोयोग से पढ़ा था — जिसमें उस दिन अधातुओं को मानो कुचल छोड़ दिया

गया था और केवल ऋतुओं के ही कुछ सामान्य गुणों का दिग्दर्शन कराया गया था। वह बताता है कि जो गुण ऋतुओं के थे, वे ही तो मनुष्यों के भी हैं।

ऋतुएं ठोस होती हैं, तो मनुष्य भी ठोस होते हैं। जल की तरह बिल्कुल 'तरल' कोई (अपने शब्दार्थ में) देखो, उस तरह जाने वाले वे नहीं होते। उन्हें इसकी भी परवाह नहीं है कि हमेशा अपना रुख एक ही रखें — क्यों वे 'जैसा देश वैसा भेष बनावें'? वे तो जहां जाते हैं - लोगों को अपने अनुकूल बना लेते हैं, न कि स्वयं उनके जैसे बन जाते हैं। 'जैसी बहे बयार, तब तैसे दीजिए।' — यह उन्हें पसन्द नहीं, क्योंकि वे ठोस हैं। — तूफान आयें, आंधियां, ओले, बर्फ और हिम और आतप — पर यह एक ठोस चट्टान है जो ज्यों की त्यों खड़ी है — अपने सिद्धान्तों पर अटल है। इसका बाल-बांका नहीं हो सकता — भले ही इसके टुकड़े कर डालो। हाय रे! ये ठोस भी कितने कठोर हैं कि अच्छा किनारा औरें लेकर लेकर कर उनकी ओर केवल कुटुम्ब को निहारती है — पर वे वैसे के वैसे बने हैं। कितना ही विरोध हो, पास-पड़ोस के कितने ही ईर्ष्या करते न थे, पर उनकी खसिका नहीं हो सकी!

पर वे मनुष्य 'कुठाराघात' भी सहते हैं। जहां तेज आंधी लगी, वहीं उखाड़ फेंका बरबस। हाय! वे बड़ी से बड़ी चट्टानें

और तीव्र से तीव्र यन्त्रणायें सह सकते हैं, पर दीन दुखियों की आह, आह! वे नहीं सह सकते। उनके हृदय को सन्ताप होता है। इसीलिये वे पिघल पड़ते हैं। क्या यही सत्य उन धातु-मृदु के विषय में भी सत्य नहीं है? —

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥'

हाँ, वे दुखियों और पीड़ितों की आह से तो पिघल जाते हैं; पर कोई तुम उनको आग में डाल लो, खूब पीसो, खूब पीटो — ज्यों ज्यों पीटोगे वे और विस्तृत होते जायेंगे — लोगों के हृदयों में और अधिक स्थान बनाते जायेंगे — वे और चमकेंगे — क्योंकि वे धन-वर्णनीय हैं। उन्हें तपाओगे, वे और चमक उठेंगे — क्योंकि वे धातु-मृदु हैं, धातु भी तो — यथा सुवर्ण — अग्नि में पककर और चमक उठता है।

और यह कि उनकी आर्थिक दशा उच्च होती है — सो भी ठीक ही है। क्योंकि उनका हृदय नीति का मापदण्ड अलग होता है, जो जन-साधारण से कहीं ज्यादा होता है। उनकी दृष्टि में कोई पाप केवल इसलिये पाप नहीं है कि वह समाज में रूढ़िरूप से पाप माना जाता रहा है। उनके लिये कोई मनुष्य केवल इसलिये नीच या 'अछूत' नहीं है कि वह नीचकुल में पैदा हुआ है, या उसके माँ-बाप अछूत हैं। उनका हृदय नीति

का मापदण्ड अलग होता है - उसी से वे सत्यासत्य का निर्णय करते हैं। यहां तक कि जिसे सामान्य लोग असत्य कह देते हैं उसे वे सत्य कह कर स्वीकार करते हैं और जिसे सामान्य लोग सत्य समझकर उस पर अटल विश्वास रखते हैं उनके अपने उस चीज़ का अस्तित्व उतना ही क्षणस्थायी है जितना बालू पर की भीत का। इसीलिये मैं कहता हूं कि उनकी आध्यात्मिक ऊंचाई अलग होती है - उन मनुष्य-जातियों से जिनमें प्रकाश कम होता है - कहीं अधिक ऊंची होती है।

'वे ताप और विद्युत के सुवाहक होते हैं। क्यों नहीं? प्रभु की प्रेम-शक्ति उनके मन-रूपी अलकतरे-पालिश पर आंधी-सी बिजली चमकाती है, बस उस बिजली से उत्पादित होती है उनके अंग२ में वह बिजली भर जाती है - वही गर्मी, वही प्रकाश, और फिर उस current को वे आगे पहुंचा देते हैं - लगातार आगे पहुंचाते रहते हैं, क्योंकि वे ताप और विद्युत के सुवाहक हैं। और चमत्कार? अन्त में एक समय पर जाकर वह शक्ति केन्द्रित होती रहती है - 'पावर हाउस' बनकर वे जाते हैं, और फिर वह 'पावर हाउस' सारे संसार को बिजली पहुंचाता है - जहां२ अँधेरा है, वहां२ प्रकाश पहुंचता है, और अन्त में सब लोग जानते हैं कि 'पावर हाउस' कहां है - सारे में आग लग जाती है और सारे संसार में एक क्रान्ति मच जाती है। ऐसी सुवाहकता!

इन्हीं गुणों के कारण तो मैं कहता हूं कि उनमें एक विशेष चमक होती है — जिसे 'धात्वीय चमक' कहते हैं। यही तेजस्वियों का तेज है। यह तेज साधारण मनुष्यों में नहीं होता, अन्य तत्वों में यह धात्वीय चमक नहीं पाई जाती। इसका ही तो अर्थ है कि ये धातु हैं और वे अधातु, ये मृदु हैं और वे अमृदु!

. . . — x . . . — x . . . — x

धातुओं के सामान्य गुण हो चुके। जिस प्रकार सोना-चांदी आदि अन्य धातुएं हैं उसी प्रकार एक धातु है ताम्बा। ताम्बे का ज्ञान लोगों को बहुत पहले से था — आखिर उसकी उम्र भी तो बहुत हो चुकी थी — बहुत - बाल सफेद हो चुके थे - झुर्रियां पड़ रही थीं, पर उत्साह? उत्साह की कुछ न पूछो — बूढ़े शरीर में जवानों को मात कर देने वाला उत्साह! कहते हैं कि ताम्बा उत्तर-भारत में और हिमालय में बहुतायत पाया जाता है। वह भी पहले-पहल उत्तर-भारत में ही पाया गया था — बिहार में; और फिर यहां हिमालय की उपत्यका में — गंगा की घाटी में — कुरुक्षेत्र में आया था।

फिर कभी कभी तो किस किस से ताम्बा निकाला जाता है — यह हमने अनुसंधान छोड़ दिया था। यहां भी हम अनुसंधान करना छोड़ दें - कि वह यहां कैसे आया था और कैसे अनुसंधान करने वालों के अनुसंधान पर निर्भर होता गया।

'ताम्र' के गुण — (भौतिक). — ताम्र का रंग चमकीला लाल होता है — आँखों को आकर्षित करने वाला। उसका रंग-रूप भी कुछ ऐसा था कि दूर से देखते ही लोग आकर्षित हो जाते थे। उसका आकार लचीला, साथ ही मधुर और चिकना था। वह भी अन्य धातुओं की तरह अत्यन्त घन-वर्धनीय था, तन्य था, पर था कठोर। हां, अन्य धातुओं के [सहयोगियों के] साथ मिल कर उसके इन गुणों में परिवर्तन भी आ सकता था। वह भी अन्य अनेक धातुओं की तरह ताप और विद्युत का अच्छा सुचालक था।

(रासायनिक गुण). — I. आर्द्र वायु और कार्बन डायोक्साइड के संसर्ग से ताम्र को जंगार लग जाता है। उसे भी रसायनियों के आलेख और अन्य सहयोगियों के अनुसार से जंगार लगा जाता था, जो कदाचित् रसायनियों के प्रथम दृष्टि के अनुभव का परिणाम है। इसे प्राचीन शास्त्रियों के अनुसार विभिन्न प्रकार से जाना था।

II. गन्धकाम्ल और उदहरिकाम्ल

ताम्र के ऊपर कोई क्रिया नहीं करते। दूसरे या सामान्यतया उसके ऊपर अथवा कोई असर नहीं पड़ता। हां, नत्रिकाम्ल तेजी से क्रिया करता है, और अन्त में नत्रित + जल बनाता है। यहां भी उसकी तीव्रता तेजी से क्रिया करती थी, जिसके फलस्वरूप 'शुद्धताम्र-संबायन' और उसके रूपों का उपयोग भी अवसित रहा।

III. जनक और लोहा नामक भी उनके लड़कों से कैसा स्वागत कर देते हैं। भी भुगतान भी कमलेश ने और गाँधी ने उन्हें कुशलता से स्वागत कर लिया।

<u>नामक का उपयोग</u> —

अब नामक का उपयोग पूछते हो? देखते नहीं कि वर्मा की पद्दोन्नयन बीतल भी प्रतिभाएं, ये मनीष पाल और ये हिन्दुस्तान के भिन्न-२ भागों से आये उन असल बनिए? — क्या ये भी उनके परिचय के लिये काफी नहीं हैं?

— देखते नहीं हो, यह 'प्रद्युम्न-निवास', ये प्रयोग-शालाएं, ये बीमारों के Wards — और ये उपवन के खुश-बूदार फूल! — क्या अब भी उसका परिचय नहीं मिला?

अलम!

X X X

मैं सोचता हूँ — कि सचमुच क्या यह एक आश्चर्य था या एक मधु-प्रमाद? क्या था? नामक — आश्चर्य-नामक — विजय बनिए!

१२ सितम्बर.

अब और तब

(ले॰ श्री रघुनाथ चतुर्वेदी)

आज श्री मान्यवर गोपालराम चन्द्र [redacted] जी ताम्बे का स्वर्गवास हुए लगभग १२ वर्ष हो जाते हैं। किसी को भी उस समय आभास न थी, श्री मान्यवर ताम्बे जी इतनी शीघ्र ही हम से विदा ले लेंगे। उन्होंने अपने ३, ४ मास के गुरुकुलीय जीवन में क्या २ कर दिखाया तथा उस समय में आयुर्वेद महाविद्यालय की क्या दशा थी और आयुर्वेद महाविद्यालय का क्या हाल है यह सब मैं इस छोटे से लेख में प्रगट करने का प्रयत्न करूँगा।

श्री मान्य गोपालराम चन्द्र [redacted] जी ताम्बे ने

गुरुकुल में आकर आयुर्वेद महाविद्यालय के आचार्य पद को विभूषित किया। कार्य के प्रथम दिन से ही ऐसा प्रतीत होता था कि मानों आयुर्वेद महाविद्यालय में नव जीवन सञ्चार होगया था। आप में अनेक त्याग, तपस्या, दान आदि गुण थे इस के अति-रिक्त आप इतने वृद्ध होते हुए भी जवानों से भी बढ़ कर कार्यक्षम थे। लगातार ४,५ operations प्रतिदिन करना तथा घण्टों एक स्थान पर ही दम लिए खड़े होकर operations करते रहना इसी बात को दर्शाता है. आप वृद्ध होना पसन्द नहीं करते थे। जब कि हम सदृश विद्यार्थी खड़े २ थक जाते थे और कहीं न कहीं बैठने का स्थान ढूंढने लगते थे उस समय आप पूछा करते थे 'क्या कोई और बीमार रह गया है।

आप बड़े मधुर भाषी थे। बच्चे भी आप से प्रसन्न होकर दवाई करवाया करते थे / जब कि सामान्यतया बच्चे किसी से इलाज करवाते समय रो-

पड़ते हैं। हरिद्वार के सब बड़े २ आदमी उनके मित्र बन गये थे।

श्रद्धानन्द सेवाश्रम का स्थापित हो जाना आप के ही प्रयत्न को दर्शाता है।

आप में एक और भी गुण था। वह यह कि आप "सौन्दर्य प्रिय" थे। बाहर के चिकित्सालय के चारों ओर आप ने बाग लगवाया था तथा अन्दर का बाग भी आप ने ही सुव्यवस्थित किया हुआ था। दोनों बागों को सुव्यवस्थित रखने के लिये आप ने अपने ही खर्च से एक अच्छा माली बुला रखा था।

यदि आप के सम्पूर्ण गुणों का बखान किया जाय तो कितने पोथे भर जाय। इसलिये अधिक कुछ न कहता हूँ। हुआ यह बताने का प्रयत्न करूँगा कि उस समय बाहर के

चिकित्सालय की क्या दशा थी और उस से पूर्व तथा उस के बाद क्या दशा हो गई।

जब हम एकादश में आये थे उस समय हम बाहर के चिकित्सालय नहीं जाते थे। पर इतना तो पता ही था कि वहाँ ५०,६० बीमार ही चिकित्सा के लिये आया करते थे वे भी छोटे मोटे बीमार। कभी २ कोई डाक्टर बाहर से बुला लिया जाया करता था जैसे श्री डाक्टर राघवे तथा श्री डा रामचन्द्र जी कौशिक आदि। उस समय दो चार दिन के लिये जलसा लग जाता था और वही प्रकार हाल हो जाता था। अर्थात् एक भी रोगी फिर चिकित्सालय में दिखाई न देता था। पर जब से श्री मान्य शर्मा जी आये तब से १५०,२०० के लगभग बीमार आने लगे। दोनों वार्ड ठसाठस भरे रहते थे और अन्य रोगियों को स्थान भी न मिलता था। यदि कोई दर्शक बाहर से आकर देखता था तो वह चिकित्सालय को देखकर बड़ा प्रभावित होता था। उस समय रोगियों को खाना पीना बिस्तर

आदि सब गुरुकुल के तरफ से मिला करता था तथा उन की सेवा करने के लिये एक नौकर हर समय ~~से~~ वहीं रह करता था। पर आज कल यदि उन वार्डों को देखा जाय तो आप दोनों ही खाली पावेंगे। और यदि कोई रोगी होगा भी तो उस को खाना, पीना, बिस्तरा आदि कुछ भी मिलना मुश्किल है। सेवा के लिये नौकर की आशा करना भी अनुचित सा प्रतीत होता था।

उस समय बाहर के चिकित्सालय के खुलने के समय, दो या तीन डॉक्टर - एक वैद्य - दो कम्पा-उण्डर तथा एक भंगी और एक नौकर रहता था। पर आजकल केवल एक डाक्टर एक वैद्य और एक भंगी से ही सारा काम ~~चल~~ हो रहा है।

यदि चिकित्सालय का निरीक्षण आय-व्यय के हिसाब से किया जाय तो उस समय ~~कम~~ का एक मास का व्यय पहले के एक वर्ष के व्यय से भी अधिक था, पर हिसाब करने पर व्यय बजट से अधिक न हुआ था अर्थात् जितना व्यय था

उतनी आय भी थी। पर आज कल न व्यय है और न ही आय।

उस समय के operations कैसे थे यह देखा जाय तो आप को प्रतीत होगा कि किसी भी आयुर्वेद कालिज में ऐसे बड़े २ operations देखने भी नहीं मिलते। साथ ही उस समय बीमारों पर इतनी अधिक देखरेख की जाती थी कि श्री डाक्टर जी स्वयं ५, ६ चक्कर दिन में वार्ड आया करते थे। पर आजकल चाहे बीमार मर ही क्यों न रहे हों* सभी निश्चिन्त हैं। किसी को भी उस बिमार की फिक्र नहीं। अधिक कहने से क्या?— एक शब्द यदि कहा जाय तो हम कह सकते हैं कि उस समय के चिकित्सालय के मुकाबले में सहारनपुर जिले में कोई भी चिकित्सालय न था।

बड़ी २ दूर से बीमार अपना इलाज कराने यहीं आया करते थे। Piles के इलाज के लिये तो यह चिकित्सालय मशहूर हो गया था।

उस समय यह चिकित्सालय पूर्ण अर्थों में चिकित्सालय था।

इतना ही नहीं, अपितु उन्होंने विद्यार्थियों के लाभ के हेतु एक विद्यार्थियों का Private पुस्तकालय भी स्थापित किया।

यह ठीक है कि वे कभी २ विद्यार्थियों को बहुत बुरी तरह से सुना भी दिया करते थे पर हमें यही समझना चाहिए था कि हमारा पिता हमें कुछ शिक्षा देने के लिये कह रहा है।

पर दुख कि वे हमारे बीच देर तक न रह सके। ईश्वर ने उन्हें शीघ्र ही हम से पृथक् कर दिया।

मरते समय वे हमें इस बात को बता गये कि एक डाक्टर का जीवन कैसा होना चाहिए। उस का काम रात रोगियों की सेवा करना है, ऐश-आराम करना नहीं। डाक्टर को कभी भी यह न समझना चाहिए कि रोगियों की सेवा

धन दौलत के लिए की जाती है, उसे तो यही समझना चाहिए कि मेरी यह विद्या दूसरों के उपकार करने के लिए ही है।

अन्त मैं उस जगदाधार ईश्वर से दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि वह श्री गोपालराम दास जी शर्मा की आत्मा को शान्ति प्रदान करें। तथा हमें भी ऐसा बल दें कि हम उनके अधूरे कामों को पूरा कर सकें।

ॐ १० – –

साँझ दिया

(ले० श्री रामदेव द्वारा)

डा० साम्बे अपने ४० वर्ष के अनुभव के बाद सरकारी नौकरी से तंग आकर शान्ति प्राप्त करने के लिए, और गुरुकुल की सेवा के लिए हिमाचल के आंचल में, भगवती भागीरथी के पुनीत तट पर स्थित गुरुकुल भूमि में आए थे। अपनी उन्हीं आदतों को वे यहां आकर भी न छोड़ सके। दिनभर काम ही काम करते रहना उनके लिए कोई कठिन बात नहीं थी। हम में से किसीने खाली घूमते हुए या बैठे हुए नहीं देखा होगा। सवेरे उठने के बाद नित्यकर्म से निवृत्त हो, प्रातराश करके चिकित्सालय में समय से १० मिनिट पूर्व ही पहुंच जाते थे, और पढ़ाई के ४ घन्टों में २, ३ ऑपरेशन कर डालते थे। कई बार तो उनको वहीं १२ या १२½ बज जाया करते थे और वे कहीं १ बजे जाकर रोटी खा पाते थे। रोटी के बाद २ घन्टे आराम करके गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय की उन्नति के लिए (धन्यवाद) पत्र लिखा करते थे। यदि कोई आदमी बुलाने के लिए आता तो उसके यहां रोगी को देखने चले जाते। शाम को ५, ६ बजे के करीब बाग में कैंची लेकर पहुंच जाते और पौदों की काटछांट किया करते थे। रात्रि को भोजनोपरान्त फिर कैंची लेकर

बाद चिकित्सालय में रोगियों की हालत और भोजनादि पूछकर चले जाया करते। इसप्रकार वे दिनभर कुछ न कुछ काम किया ही करते थे।

जिसदिन से डाक्टर जी यहां पधारे उसी दिन से Medical और Surgical ward भरने शुरू हो गए, आखिर यहांतक नौबत आ पहुंची कि जगह की कमी के कारण लाचार हो कई रोगियों को वापिस जाना पड़ता था। बाद में चिकित्सालय में दूर दूर से लोग अपना इलाज कराने आया करते थे।

छुट्टियों के बाद की बात है, मैं सवेरे घूमने जा रहा था, रास्ते में एक आदमी मिला। उसने मुझसे पूछा — बूढ़े डाक्टर कहां हैं? — मैंने आंख का इलाज करवाना है। मैं उस आदमी को क्या कहता, वे तो इस दुनिया को पहले ही छोड़ चुके थे। आखिर मैंने लाचार होकर उसे कहा — "वे तो इस दुनिया में नहीं हैं।" इतना सुनते ही उसकी आंखों में से आंसू की दो बूंदें निकल पड़ी। यह था उन की ~~कु~~ कुशलता और सर्वप्रियता का प्रमाणपत्र।

डाक्टर जी पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा क्रियात्मक ज्ञान को बहुत महत्व देते थे, यहांतक कि कई बार हमें पढ़ाने भी नहीं आते थे और ऑपरेशन ही किया करते थे। यदि कोई आपरेशन का अच्छा केस हुआ तो सारी श्रेणी की छुट्टी करके बुला लिया करते थे।

जब कभी पढाने आते तो उस को क्रियात्मक रूपसे करके अवश्य दिखा दिया करते थे।

ठाकुर जी ने आने के बाद पुरानी सड़कों को ठीक करवाया और नई सड़के बनवाई। रोगियों के लिए दो आतुरालय बनवाए जिसमें से एक उन्होंने स्वयं गुप्त दान देकर बनवाया। इसीप्रकार आयुर्वेद चिकित्सालय में सड़कों के किनारे फूलों के पौदे लगवाए। ऐसे ही कई छोटे मोटे कार्य उन्होंने करवाए। इसके अतिरिक्त पानी के नलके और बिजली तक उस विभाग में लगवादी। यदि वे अभी होते तो शवच्छेदन भवन आदि सब कुछ बनवादेते और गुरुकुलीय आयुर्वेद महाविद्यालय को ऊंचे दर्जे पर पहुंचा चुके होते।

इसप्रकार ठाकुर जी ने तन मन धन से गुरुकुल की सेवा की। जिसप्रकार वायु के झोंको से बुझता हुआ दीपक एक बार जोर से प्रकाश दे जाता है और फिर सदा के लिए अन्धकार कर जाता है उसीप्रकार ठा० साहब अपने जीवन की सांझ में ज्ञान का सर्वतोऽधिक प्रकाश देकर सदा के लिए अन्धकार में समा गए। आज आदित्य की लौ इन सब की आंखों में वैसी ही लाल बसी हुई है।

सच्चा गुरु

(—श्री प० केशवदेव जी)

ठाकुर साहब की स्मृति अत्यन्त पावन है। स्वर्गीय ठाकुर जी का कर्तव्यपालन और अपने बुढ़ापे की जवानी लगन में हम सब को अनुकरणीय आदर्श दिखाते हैं। उनके बाह्य व्यवहार में प्रतीत होने वाली रूक्षता के पीछे कोमल हृदय का अथाह प्रेम छिपा हुआ था। धन और पुत्रों की इच्छा को मारकर, सेवाभाव से प्रेरित होकर, गुरुकुल को अपना जीवन समर्पण करने की इच्छा से वह सच्चा वानप्रस्थी गुरु बनने आया था। वह सब कुलवासियों को अपना बच्चा मानकर दिल से प्रेम करता था। उसके ताड़न में गुण छिपे थे। सम्भवतः हम लोग उनके भावों को ठीक न पहचानकर अपनी सुविधाओं के लिए गए नियन्त्रण को न सहनकर उनका विरोध करने लगे हों, जिससे उन्हें दुःख पहुंचा हो। आशा है, उन्होंने अपनी उदारता से हमारी उन शिथिलताओं को क्षमा कर दिया होगा। उन्होंने एक सत्र के थोड़े से समय में जो क्रियाशीलता प्रदर्शित की थी वह वस्तुतः आश्चर्यजनक तथा अनुकरणीय थी। हम परमपिता से प्रार्थना करते हैं कि वह स्वर्गत ठाकुर जी की स्मृति के सम्मुख हमें उनके पावन स्वरूप से प्रेरणा प्राप्त करने की सामर्थ्य दें।

दैवी देन

(ले०- श्री उपाध्याय विश्वनाथ जी)

डाक्टर लाम्बे एक अच्छे डील-डौल के व्यक्ति थे। उन्हें देखते ही रोगी के दिल में एक प्रकार का आश्वासन सा हो जाता था। वृद्धावस्था में होते हुए भी आप अनथक परिश्रमी थे। घण्टों खड़े होकर ऑपरेशन करते, अपने आराम की परवाह किये बिना रोगियों की सेवा के लिये एक वीर योद्धा की न्याईं सर्वदा उद्यत रहते थे। रोगियों के रोग की चिन्ता उन्हें बहुत थी - परन्तु रोगियों की उतावली चित्तवृत्ति की वे तनिक भी परवाह न करते थे। आसन्नावस्था में रोगी के बिना बुलाए भी डाक्टर लाम्बे दिन में कई बार रोगी के पास जाकर उससे रोगवृत्तान्त जाना करते थे। और उन्हें तरह तरह का आश्वासन दिया करते थे। परन्तु यह बात होने पर, कि रोगी ठीक प्रकार से प्रगति कर

रहा है, फिर भी रोगी के द्वारा बार बार बुलाए जाने पर, वे उसके बुलावे की विशेष परवाह न करते थे - बल्कि ऐसे बुलावे को वे अच्छा न समझते थे।

गुरुकुल में आयुर्वैदिक विभाग के लिये डाक्टर साम्बे दैवप्रेषित एक देन थे। डा॰ साम्बे के आगमन से गुरुकुल का बाहर का औषधालय चमक उठा - उसमें फिर से एक नया जीवन आ गया, निष्प्राणावस्था से यह फिर सप्राणावस्था में बदल गया। उससे पहले बाहर के औषधालय को कैप्टेन रामचन्द्र ने सजीव किया था। परन्तु औषधालय डा॰ रामचन्द्र जी के चले जाने पर, फिर सुस्त सा होता था कि समय पर डा॰ साम्बे ने इसे पुनः सजीव तथा सचेष्ट कर दिखाया। जब तक डा॰ साम्बे रहे - इस औषधालय में रोगियों की भरमार दिखाई देती थी। इस कथन को, कि गुरुकुल का बाहर का औषधालय ब्रह्मचारियों को चिकित्सा सिखाने के लिये पर्याप्त रोगी एकत्र नहीं कर सकता - डा॰ रामचन्द्र तथा डा॰ साम्बे ने अयथार्थ सिद्ध कर दिखाया था।

डाक्टर साम्बे एक विशेष लगन के डाक्टर थे। रोगी के लिये इन के शरीर में सजीव हृदय काम करता था। ये रोगियों द्वारा अपने बाहर के बुलावों पर भी चिकित्सा के लिये आया करते थे और सम्भवतः

रोगियों के इन बुलावों पर फीस भी लिया करते थे। परन्तु डा० ताम्बे इस प्रकार प्राप्त फीस को नियमपूर्वक अपनी नोटबुक में लिखते जाते थे। फीस से प्राप्त धन को उन्होंने अपने निजव्यय में कभी प्रयुक्त नहीं किया - अपितु गुरुकुल के बाहर के औषधालय को उन्नत करने में ही उस का सदुपयोग किया। इस प्रकार का आयव्यय का हिसाब उन का सदा खुला रहता था, जो चाहे उसे देख सकता था। इस प्रकार डा० ताम्बे ने अपनी विद्या तथा तन कमाई द्वारा गुरुकुल के आयुर्वैदिक विभाग की पर्याप्त सेवा की।

डाक्टर ताम्बे ने इन सेवाओं को अपने आर्थिक लाभ का साधन नहीं बनाया, और न इन सेवाओं के लिये गुरुकुल से कोई आर्थिक उपहार ही लिया। अपितु अपने सेवाकाल में डा० ताम्बे गुरुकुल के जिस मकान में रहते थे - उस का नियमपूर्वक किराया भी गुरुकुल को देते रहे। अपने भोजन-आच्छादन का उनका अपना ही व्यय था। उनकी यह भी इच्छा थी कि उनके धन से गुरुकुल में एक रोगीगृह भी बन जाय जिस का व्यय १२००) के दान देने को भी तैयार थे। परन्तु यह सब कुछ डा० ताम्बे की निज की आर्थिक स्थिति के अच्छे होने का ही [redacted]

परिश्रम था। डा० नाम्बे एक सम्पन्न व्यक्ति थे - इसलिये वे धन की चिन्ता से मुक्त थे। डा० नाम्बे ने गुरुकुल के औषधालय को बहुत से उपकरण दिये, कई रोगियों के बिस्तरे दिये तथा व्यक्तिरूप में निर्धन रोगियों को भोजन का भी दान किया करते थे।

डा० नाम्बे गुरुकुल में जब आये तो आयुर्वेद-महाविद्यालय के प्रिंसिपल के रूप में आये। इसलिये वृद्धावस्था में भी उन्हें पर्याप्त उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना पड़ा। बाहर के औषधालय में प्रायः रूप से दिन-रात चक्कर काटते हुए उन्होंने पढ़ाई का भी पर्याप्त भार अपने ऊपर ले लिया। उनके पढ़ाई के घण्टे कम हैं या अधिक, प्रातः काल के समय में पढ़ते हैं या सायंकाल के समय - इसकी उन्होंने कभी परवाह नहीं की। काम करना और कर्त्तव्य पालन करना - यही उनके जीवन का मुख्य ध्येय था। वे कहा करते थे कि जब जीवन है तो काम है, काम तो तभी छूट सकता है जब कि मनुष्य निष्प्राण हो जाय। इसी मनोवृत्ति ने वृद्धावस्था में डा० नाम्बे को अवलम्ब दिये रखा - जिस से वे इतना काम कर सकते थे।



डाक्टर ताम्बे अपने स्वाध्याय में भी पर्याप्त समय देते थे। अपने पुराने पढ़े हुए को - पढ़ाने के लिये फिर से स्मरण करना, उसके लिये नोट्स लेना तथा उन्हें साथ-साथ स्वयं टाइप करते जाना - यह सब परिश्रम डा० ताम्बे किया करते थे। उनका यह परिश्रम नवयुवकों के लिये अनुकरणीय था। गुरुकुल में आने पर उनमें पाश्चात्य ऐलोपैथी तथा पूर्वीय आयुर्वेद में तुलनात्मक अध्ययन की भी अधिक लालसा बढ़ गई थी। कभी कभी वे यह भी कहा करते थे कि समय मिलने पर सम्भवतः गुरुकुल में वे स्वयं आयुर्वेद का तुलनात्मक अध्यापन करेंगे।

परन्तु जो दैवी शक्ति डाक्टर ताम्बे को अकस्मात् गुरुकुल में लाई थी - उसने डाक्टर ताम्बे को गुरुकुल से अकस्मात् वापिस भी शीघ्र ही बुला लिया। दो मास के दीर्घावकाश का समय था। सब साथी तथा सहकार्यकर्त्ता अवकाश पर बाहर गये हुए थे। उन्हीं दिनों डाक्टर साहब के पेट में कुछ खराबी हुई। इलाज के लिये वे बॉम्बे जाना चाहते थे। बॉम्बे के लिये रवाना हुए - परन्तु अभी रास्ते में ही थे कि निमोनिया ने इन्हें आ दबोचा और बॉम्बे पहुँचने से पूर्व ही इनकी जीवन लीला समाप्त होगई।

डा० नाम्बे जिस आकस्मिक विधि से गुरुकुल में आये थे, उसी आकस्मिक विधि से इनका सम्बन्ध गुरुकुल से विच्छिन्न होगया। डा० नाम्बे शायद गुरुकुल में रहने न आये थे वे तो गुरुकुल को एक रास्ता दिखाने आये थे। गुरुकुल को रास्ता दिखा दिया और उनके जीवन का मिशन पूरा हुआ।

सोमराज

(ले० — श्री देवराज उपदेश)

'कुसुमस्तबकस्येव द्वै गतीह मनस्विनः ।
मूर्ध्नि वा सर्व लोकस्य शीयन्ते वन एव वा ॥
भर्तृहरि:

पुष्पित फूलों के समान दुनियां में पूजित होना और अपनी - अलौकिक प्रभा से सर्वशिरोमणि हो कर रहना ही मनुष्यत्व का - प्रथम चिह्न है ।

टैनिसन.

x x x

सचमुच किसी के आंख के कांटे अथवा दिल के तीर बनना - कितना सरल है - किन्तु सर्वांग सम्पन्न हो कर सब की दृष्टि में -

चांद बन कर चमकना उतना ही नही अपितु उस से भी कही कठिन - है।

वस्तुत: भव्यव्यक्तियां एक प्रकार की शक्तियां हैं जो कि संसार-में चन्द्रसम सब की आह्लादक हो कर चमकती हैं और ये शक्तियां-अपनी द्युति से अन्य प्रभो के हृदयों मे भी प्रकाश पहुंचा कर - - उन के निर्मल हृदयों मे घर कर जाती है। उस भव्य व्यक्ति के - संसर्ग मे आ कर और उस से दिव्य स्नेह को पा कर कौनसा हृदय - दीप नही जगमगाता और मान्यपाठक। किस कृष्ण पट से भी ज्योति-शतश स्फुरित नहीं होती - ।

\+ \+ \+

गुरुकुल में आयुर्वेद ने कब पदार्पण किया इसे हम निश्चय - पूर्वक नही कह सकते मगर इतना जरूर जानते है कि एक समय - था जब यह आयुर्वेद लोक आलोकित प्रभा से हीन हो चुका था - - तथा इस के पुन: आलोकित होने की आवश्यकता अनुभव की जा - रही थी।

\+ सोमराज+

बहुत समय से हम ने यह सुन रखा था कि एक ऐसा भी - लोक है। जो कि इक्कठे सात चन्द्रो से आलोकित होता है मगर यह - लोक कौनसा था इस के समझाने का कष्ट कभी ऐतिहासिकों या भूगोल -

विद्या के वेत्ताओं ने आज तक न किया था। मेरे विचार में यह लोक हमारा ही 'आयुर्वेद लोक' था - जिस में छः चन्द्रों के होते हुए भी 'सोमराज' के अभाव से लोक प्रकाशहीन से प्रतीत होते थे। अहा? आज कितने काल के अनन्तर सोमराज के उदित होने का दिन है इसे देखने के लिए सारा जग आतुर है। थोड़ी देर में - सोमराज का उदय होता है और इस लोक में के राजमञ्च पर एक दम सोमराज के उदय - के साथ ही एक व्यक्ति पधारता है। यही पुरुष सोमराज के साथ उदित होने से एवं सौम्य प्रकृति होने से सोमराज है।

\+ \+ \+

\+ आशा की सुख स्वर लहरी +

उस महानुभाव के आगमन से आयुर्वेदिक जगत् में उल्लास की सीमा न रही और चकोर हर्षित हो उठे, सब ने उस सोमराज - का अभिनन्दन किया।

आज आयुर्वेद महाविद्यालय के डा 'लाम्बे जी' द्वारा सनाथित होने पर विद्यार्थियों के भावी जीवन के लिए टूटे हुए आशा के तार झंकृत हो उठे और उन से पु- सुरीली झंकार आने लगी। इस - झंकार में था महान् आश्वासन और छिपा था इस में भविष्य के - जीवन का मधुर गान ।

+ चन्द्रलोक का मनोभावुक दृश्य +

श्रीयुत डा. 'ताम्बे' साहिब के ही महान परिश्रम तथा उत्साह का - यह परिणाम था कि कई सालो से वीरान सी पड़ी हुई नाग्न चिकित्सालय की buildings के सामने अब सहारनपुर - लुधियाना - अम्बाला आदि - दूर २ के ज़िलो से आपरेशन के लिए आए हुए व्यक्तियों की कारें - पंक्तियों में दृष्टिगोचर होती थीं। तथा हरिद्वार से प्रतिदिन कितने - व्यक्ति यहां दवाई करवाने आते थे यह कहना बहुत कठिन है। नाग्न - चिकित्सालय के [illegible] प्रांगण में जहां तहां बहुमूल्य एवं सुन्दर २ पौदे लहलहाने लगे और इस का एक २ कोना गुलाब तथा रातीगन्धा की महक से - दिन रात सुवासित रहने लगा। यह उसी दिव्यात्मा का दान था।

+ + +

प्रातः उदित होते हुए एवं सायं को अस्त होते हुए सूर्य की - किरणें इन नए पौदों पर विचित्र प्रभा ला देतीं इसलिए उस स्वर्णिम - प्रभा से इस 'नाग्न चिकित्सालय' की द्युति सोने की लड़ियों से ओतप्रोत - मन्दिर-सम प्रतीत होती थी। यह एक सुमोलोक सा दीखता है इसे ही - हम चन्द्रलोक कह रहे हैं।

+ + +

चन्द्रलोक के यातायात के मार्ग कितने सुव्यवस्थित एवं सुन्दर थे यह - देखते ही बनता था और इन के चारों ओर मार्ग छोड़ कर खड़ी हुई कारें देखने के

स्वर्ग से उतरे हुए विमानो के समान शोभा पाती थी सचमुच ऐसे चन्द्रलोक के दर्शन करने के लिए किन्नर गन्धर्वादि देवो का स्वर्ग से अवरोहण भी स्वाभाविक ही है।

X X X

+ चन्द्रलोक का एकाधिपत्य +

इस अद्वितीय लोक के अधिपति सोमराज ही थे। देखा जाए तो अधिपति कहलाना सरल है परन्तु यथार्थ मे अधिपति के कर्तव्यो को आपत्ति मे भी निभाना कठिनतम है। जिस गुलशन मे वर्षो से बहार न आई थी आज वही फुलवाडी मानो सहसैव वसन्त के आगमन से प्रफुल्लित हो उठी और उस के पत्ते ~~फल~~ व्यजनो के समान सन्तप्त हृदयो को भी आनन्द देने लगे इसे ही कहते है मुर्दो मे जीवन डालना और जीवितो मे स्फूर्ति लाना। इसी जोश मे इस चमन को रोशन करने वाली और इस आयुर्वेद [illegible] जगत [illegible] [illegible] को उज्वल करने वाली बुलबुले मस्ती मे इस तराने को दोहराया करती थी

बुलबुलो। क्या देखती अपने चमन के वास्ते -।
बुलबुले कुर्बान होती है चमन के वास्ते - ॥

तथा मजा लूटती थी इस फुलवाडी मे आत्मीयता का नाता जोड कर। इसे कहते है एकाधिपत्य जिस मे अधिपति और प्रजा मे भावना

उदारता की महामारी

दुनिया मे हमे ढूढने पर कुबेर सम धनी और इन्द्रसम कितने ही ऐश्वर्यशाली मनुष्य मिल सकते है । किन्तु एक बात इन मे ध्यान देने योग्य है कि प्रायशः ९८% पुरुष आधियो अथवा - व्याधियो से पीड़ित दिखाई देते है किसी को राजयक्ष्मा है तो कोई दमे बेहाल बैठे है परन्तु आप ने यह कभी नही सुना होगा कि इन तोंद वाले सेठो को कभी उदारता की महामारी ने पकड़ लिया हो या कभी वे इस के शिकार हुए हो । आश्चर्य की बात है औरो की बीमारियो का समूलोन्मूलन करने वाले इस सोमराज को भी इस महामारी ने घेर रक्खा था - जिसे कि Diagnosis करने पर उदारता का (डाक्टरों ने) नाम दिया । मै नही जानता कि वे कौनसे डाक्टर महोदय थे परन्तु मेरा इस विषय मे उन से मतभेद है - वह यह है कि यह महामारी नही अपितु छोटी सी बीमारी जरूर है और इस रोग मे मै निश्चय से नही बतला सकता कि शारीरिक स्थिति कैसी होती है - मगर इतना जरूर रोगियो से अनुभव किया है कि इस रोग के - रोगियो की मानसिक स्थिति पहले से कहीं उन्नत हो जाती है इस लिए मेरा विश्वास है कि मानसिकोन्नति तो निश्चित होती ही है मगर रोगी मे शारीरिक ओज भी साथ ही साथ वर्द्धिगत होता है। उदारता - की बीमारी से उन का हृदय मोम के समान द्रव सा हो गया था तथा -

बीमारों को देखते ही पिघल उठता था।

- सर्जन के रहस्य भरे स्वप्न -

उस के स्वप्नों में कितनी भव्यता थी और वह कैसे - स्वप्न लेता था यह तो उस के साथ काम करने वाले आयुर्वेदी व विद्यार्थी ही जानते हैं - उस का यह कथन कितना सार - गर्भित एवं अमूर्त भावनाओं को भी जगा देने वाला होता - था - और विद्यार्थियों के हृदयों में उमंगों की तरंगों को - उत्पन्न कर देता था कि -

मैं वह समय शीघ्र देखना चाहता हूं जब कि आगामी - वर्ष दीपावली के शुभ अवसर पर केवल मैं ही नहीं, अपितु मेरे - ये विद्यार्थी - १५ सर्जनों के समान मुझे out door में दीखेंगे - और अपनी कुशलता प्रदर्शन द्वारा इस श्रद्धानन्द सेवाश्रम - के नाम को उज्वल करेंगे।

सचमुच ये थे उस के दिव्य स्वप्न और उन्हीं की सह - सहचारिणी थी उन्हें सफल करने वाली लगन। इसे ही कहते - हैं कि -

मुहब्बत में यह लाज़िम है कि जो-

कुछ हो फ़िदा कर दे।

ये दिव्यस्वप्न भला किस आयुर्वेदीय छात्र के दिल में उस महात्मा-

के प्रति पूजा के भावो को नही भरते और किसे अपनी स्मृति के - साथ उस आत्मा की याद नही दिलाते।

+ दिव्य यात्री फिर देवलोक को +

सचमुच इन दिव्यात्माओ को दिव्यलोक मे ही निवास करना होता है इसलिए इहलोक मे रहते हुए भी वे अन्यमनस्क रह - सांसारिक भावनाओ से उठ कर ही रहती है जिस का अन्य पुरुषो को ज्ञान भी नही होता । साधारण मनुष्य यह सोचा करते है कि यह आत्मा यहीं निवास करेगी और इस स्थान को अलंकृत करेगी आई है मगर उन्हें क्या मालूम कि यह महायात्रा के लिए जाती हुई दिव्यात्मा का छोटा सा पड़ाव है और न जाने यह कब बिना पता दिए ही प्रस्थान कर देगी।

+ + +

देखिए कितनी आश्चर्य जनक नजारा है और इस मे कितनी है तनाव की अवस्था है एक तरफ तो कुल चाह रहा है कि मेरी इस भव्य माला मे से चमकता हुआ जा ताम्बे रूपी फूल निकलने न पावे और दूसरी ओर प्रभु का इस प्रिय व्यक्ति का अपने पास बुलाने का प्रयास हो रहा है - होता क्या है कि उस दिव्य शक्ति की विजय होती है और वह दिव्यात्मा उस की ओर (दिव्यशक्ति की ओर) प्रयाण करती हुई कुलवासियो की आंखो को आंसू भर देती है और कर देती है इन्हें विकल

~~कर जाती हैं~~ अपने प्रभाव से। देखिए इस नज़ीर को देकर कवि भी-
इन पंक्तियों को बिना दोहराये नहीं रह सकता कि-

उसी की शान बाकी है - उसी का नाम बाकी है ।
कि जिस की मौत पर - दुनियां का हर इन्सान रोता है॥

इसे ही कहते हैं कि सामान्य पुरुष में और देवजन में भेद। दिव्यात्मायें-
इस संसार को आहुति बन कर संसार में अपना नाम कर जाती हैं और-
पशुवत् निरुद्देश्य जीने वालों पुरुषों की आहुति भस्मसात हो ~~जाती~~ होती है,
और उस की सुगन्ध तो अपनी होती ही नहीं जो दिग् दिगन्तों में फैल-
सके। सचमुच ऐसी दिव्यात्माओं को ही वैदिक भाषा में जीवन -
मुक्त कहा है।

\+ \+ \+

- देखें कब दिव्यात्मा के स्वप्न सत्य सिद्ध होते हैं -

अब विचारने योग्य विषय यह है कि क्या इस मृत्युलोक -
निवासी के वचन एवं स्वप्न निर्मूल एवं निरर्थक थे अथवा इन्हीं
उन में रहस्य भी ध्वनि। उन में कोई ध्वनि थी या नहीं इसे कोई-
निश्चय से न कह सकता है, न ही बतला सकता है। परन्तु अब भी-
जब कभी वह दिव्यात्मा इस अपने चन्द्रलोक या स्वर्गलोक से-
निरीक्षण करती होगी तो क्या उस के स्वप्न उस के साथ तर्पण -
ओत प्रोत न होंगे। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता कि दिव्यात्माएं -

स्वर्ग के घोर सुख को पा कर अपने कर्तव्यों एवं स्नेहों को भूल जाए अपने कर्मक्षेत्र को भी छलपूर्वक भूल जाना तो साधारण पुरुषों का लक्षण है न कि महात्माओं का

\+ \+ \+

अब भी वह आत्मा अपने [illegible] चेहरे से उदासीन होकर [illegible] अवगाहन करती होगी तो क्या वह अपने स्नेहों को असिद्ध पा कर [illegible] नतमस्तक न होती होगी? और क्या वह [illegible] जोड़ती होगी अपने अतीत स्नेहों को सिद्ध करने वाले [illegible] से [illegible] दिखाता की।

\+ \+ \+

देखिए उन जीवात्मा के स्वप्न में तत्पर सिद्ध होंगे और [illegible] आशीर्वादों से हमारा जीवन सफल होगा और [illegible] होगा।

२५ ५/६५ — [signature] — 10 9/38

हा! गोपाल!

(श्री अनन्त)

सुनो बात ऐसी मैं तुमको सुनाऊँ
कि हँसते हुए तुमको इससे रुलाऊँ
सुनो पर जरा देर को धैर्य धरना
उछलते दिलों को जरा बस में करना ॥

सम्भलना जरा हे! हृदय रखने वालो
सम्भलना जरा खुद को मर करने वालो।
धड़कते कहीं बैठ जाएँ न दिल ये
पत्थर हो न जाए कहीं अब नयन ये ॥

भरें न कहीं अश्रु से विश्व सारा,
जले न कहीं आह से यह नज़ारा।
यह घटना नहीं एक बिजली का गिरना,
खिले फूल पर क्रूर ओले का गिरना॥

जिसे हम थे कहते हृदय पट हमारा,
रहा जो सदा "फूल" की आंखों का तारा।
वही पूज्य गोपाल ताम्बे हमारा,
हमें छोड़कर स्वर्ग को है सिधारा॥

न शक्ति रही कह सकूं इससे आगे,
न ये अंग भी साथ देते अभागे॥
सुनेगा वही आह-उफ़ बस कहेगा,
न आगे कहेगा न आगे सुनेगा॥

डाक्टर ताम्बे और आयुर्वेद कालेज

[ले०- श्री प० पृथ्वीराजजी (सूपा), आयुर्वेदालंकार]

जहां तक मेरा डाक्टरजी से सम्बन्ध रहा है उसमें उनके वैयक्तिक गुणों को बार बार दुहराना मैं नहीं चाहता क्योंकि यह समस्त आयुर्वेद जगत उनके गुणों का ज्ञाता है। लेकिन मैं उनके आयुर्वेद कॉलिज के विचार के बारे में (जो कुछ मुझसे बातचीत हुई थी) कुछ प्रकाश डालना चाहता हूं। सबसे मुख्य बात यह है कि आयुर्वेद कॉलिज का पूर्णतया पृथक् आयुर्वेद कॉलिज के प्रिंसिपल के नीचे होना चाहिये। जिसे वे बार बार कहते थे। और इसी अभिप्राय से उन्होंने कई काम किये थे जिनसे यद्यपि विद्यार्थी गण असहमत होंगे। उदाहरण के तौर पर उनका अन्य कॉलिज की भांति सभा आदि में

जिससे इस कॉलिज का कोई सम्बन्ध न हो उसमें आयुर्वेद के छात्र भाग न लें। वह केवल इसलिये कि कई सभायें का अधिवेशन हमारे कॉलिज के लिये वाकई उपयोगी नहीं होते। तो उनका बगैर से अलग प्रिंसिपल के होने से सब काम पूरा बड़े आराम से हो जाते हैं और ये अधिवेशन कॉलिज कॉलेज के अलग अलग हुआ करें इस पर अधिक लिखना नहीं चाहता क्योंकि मैं इनके मानि जीवन को कुछ सुधारना भी दिखलाना चाहता हूं।

दूसरा कॉलेज के विद्यार्थियों का निवास (आश्रम) के बारे में इनके मतानुसार दो विभाग कर देने चाहिये कि ओर आयुर्वेद कॉलेज और दूसरी ओर दूसरे कॉलेज। इस प्रकार करने से कॉलेज कॉलेज का वातावरण कुछ इस प्रकार का बन जाता है जिसमें अपनी अपनी लाइन खास वातावरण बन जाता है और आपस सम्बन्ध भी न टिके तीसरे Routसे

तीसरा टाइमटेबल सम्पूर्ण आयुर्वेदिक कॉलेज से लेकर चार दिन भर का जीवन अलग अलग हो (अर्थात्

पृथक पृथक कॉलिज के आचार्य जिस प्रकार बनायें) हो तो अच्छा रहता है। क्योंकि एक साथ मिले जुले होने से इन्टर डिपार्टमेन्टल नहीं हो सकता और Discipline में कठिनाई पड़ती है क्योंकि आयुर्वेद कॉलिज के पढ़ाई के लिये समय की अधिक अपेक्षा रहती है होस्टल आदि का प्रबन्ध भी (यदि आगे योग्य किया जावे) तो हो सकता है और यह प्रोग्राम आसानी से चल सकता है।

चौथा जो इस कॉलिज के बारे में इनकी सम्मति थी कि कॉलिज की ३ री तथा ४ थी श्रेणी के विद्यार्थियों इतवार को बाहर ग्रामों में जाया करें और भिन्न भिन्न तरह के केस इकट्ठे कर लावें ताकि उनको इसका भली प्रकार क्रियात्मक ज्ञान हो सके। इसके अतिरिक्त ग्रामीण अनपढ़ जनता जो कि शल्य कर्म से डरती है और तकलीफ पाती है उनका भला होता है तो इस प्रकार एक तीर से दो निशाने मारे जाते हैं।

पांचवीं बात यह कि डाक्टर जो कि सर्जरी विजिट करवावें वह अपने साथ दो चार विद्यार्थियों को बारी बारी से ले जाया करें ताकि केस का विजिटिंग करना और ह सीखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त छठी बात यह कि विद्यार्थियों के आश्रम में एक लाइब्रेरी होनी चाहिये जिसमें नवीन नवीन किताबें रक्खी जावें और आयुर्वेद के विद्यार्थी उनसे वाकिफ होवें इस प्रकार उनके प्रोग्राम में कुछ सुधार करना मैंने सोचा है। यदि इसके मुताबिक किया जायगा तो सम्भवतः आयुर्वेद कॉलेज की उन्नति में काफी तरक्की होगी। दो चार बातें और हैं जो अधिकारी वर्ग से प्रार्थनीय हैं वे भी उनकी लेकिन अब हमारे लिये भी अत्यधिक आवश्यक हैं जिन पर ध्यान देना चाहिये।

(१) कॉलेज की डिग्री को किसी सरकार से Recognise करा लेना चाहिए क्योंकि कितना भी योग्य आदमी क्यों न हो लेकिन उसका मान तब तक नहीं जब कि उसे काम करने का मौका न मिले लाचार उसके ऑपरेशन बारे में सरकारी नौकर नहीं मिलता परिणामतः गुरुकुल के आयुर्वेद कॉलेज के स्नातक पीछे हुए रहते हैं और किसी जगह तक मामूली कम्पाउण्डर से भी ऊंचा नहीं गिना जाता तो यह अत्यन्त आवश्यक है।

यह उपरोक्त बात उनकी मैंने कही परन्तु आजकल बोम्बे प्रेसिडेन्सी का हाल मालूम होता हो जहां पर कॉंग्रेस कमिटी के होते हुए भी गुरुकुल के स्नातकों की कितनी कीमत हो जहां की विद्यापीठ के स्नातकों पर मूल्य उन्होंने कटौती कर दिया है और कि एक अच्छी गवर्नमेंट युनिवर्सिटी का होता हो तो उसके Recognise न होने से कितनी हानि हो। उसके अतिरिक्त आयुर्वेद कॉलिज के स्नातक भाइयों को तो बड़ा कितनी तकलीफ़ में डाल दिया हो। सब आयुर्वेद प्रेक्टिशनर भाई प्रेक्टिस बंद करके मजदूरी करेंगे यदि उस पर गुरुकुल के अधिकारी वर्ग ने ध्यान न दिया तो जहां गुरुकुल से ढाई सौ की संख्या और उतना मूल्य हो चुका है और गुरुकुल का स्नातक उनके योग्य होते हुए पिछड़ जाता है। ऐसी अवस्था में उनके पिछड़ने का कारण गुरु-कुल हो unrecongise होना है तो इस पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है लेकिन अधिकारियों का ध्यान में ये स्पष्ट पड़ जाय जिससे कुछ कॉलिज का उद्धार होगा।

इसके अतिरिक्त यदि किसी कॉलिज में आगे पढ़ने वाले

को भी उनकी परीक्षाओं का दिया जाता इसलिये वे आजाते हैं। तो ये बातें जानकर उपरोक्त डा० साहिब भी शरीफ बिलकुल शान्त हैं।

तीसरी बात कॉलिज मेडिकल ग्रांट के बारे कहते थे कि अगर गुरुकुल के पास पैसा नहीं है तो सरकार से ग्रांट ले और अपना कार्य चलावे। साथ केवल आयुर्वेद कॉलिज को Recognise करावें। यह बात भी उपयुक्त मालूम पड़ती है। क्योंकि महाविद्यालय का रुपया तो उस काम आ नहीं सकता तो फिर सरकार भी महाविद्यालयों को बहुत दे सकती है तो उस से लेकर काम करो। इस बात पर भी अधिकारी लोग ध्यान देंगे। उनको सबसे भारी तकलीफ यही रुपयों की थी अन्यथा वे कितनी उन्नति कर जाते। हॉस्पिटल के बारे कौन वाकिफ नहीं हैं। उनका कहना था कि अगर मैं कायम रहूं तो गुरुकुल ऐसे किसी प्रकार उन्नति होनी चाहिए। इतने थोड़े अरसे में गुरुकुल का हॉस्पिटल कितना लोकप्रिय हो गया वह उनके समय की काइल को देखकर जाना जा सकता है। उनके विचार

थोड़े से लेख में बतला दिये हैं आशा है यदि अधिकारी वर्ग इनको ध्यान में रखकर विचार करेंगे तो काफी उन्नति की सम्भावना है और होगी भी। अन्त में मैं अपने गुरु डाक्टर साहब के चरण कमलों में श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं।

दो शब्द

(ले० — श्री नवरत्न [illegible])

मिस्टर [illegible] अमर ग्रन्थ [illegible] महाकवि टागोर के Inscrutable are the ways of woman's heart इस वाक्य के woman's शब्द की जगह यदि हम human करदें, तो भी यह अपने इसी अर्थको विस्तृत रूपमें प्रकट करेगा।

संसारमें प्रत्येक मनुष्य अपनी कोई न कोई विशेष इच्छा लेकर आविर्भूत हुआ है। कोई धनके पीछे दौड़ रहा है तो कोई यश प्राप्त्यर्थ मरा जा रहा है। मानव समाजका समझना उतना ही कठिन है जितना सामुद्रिक जलोंमें मीठे जल को खोज निकालना।

टिप्पणी — प्रस्तुत लेख के लेखक महोदय [illegible] एक उत्तम समालोचक हैं पर हैं बहुत [illegible] तथा कटु। उनकी कटुता में सत्य छिप जाता है और कहीं कहीं तो [illegible] कटुताप्रियता के कारण सत्यता की सीमा को भी इस लेख में लांघ गये हैं। [illegible] ५० [illegible]
[illegible] के आधार पर ही उन्होंने यह लेख [illegible]। उदाहरणार्थ डा० [illegible] को [illegible] उन्होंने एक हारा [illegible] और दाम्पत्य जीवन में दुःख [illegible] दिखाई पड़ते हैं [illegible] कि [illegible], [illegible] दुनिया के [illegible] को [illegible]

मनुष्य स्वभावतः एक आराम पसन्द प्राणी है। जीवन की कठिनतम संघर्षमय घड़ियों में भी वह अतीत की घटनाओं के आधार पर सुदूर भविष्य की सुन्दरतम - सुखद कल्पनाओं में विमुग्ध रहता है। सदियों की भाँति प्रत्येक अध्यवसायी पुरुष को इस बात का विश्वास है कि "I am the chosen person" उपरोक्त विचार को हम शाश्वत सत्य के रूप में अस्वीकार करने में कुछ हिचकिचाते जरूर हैं। हमने कहा था कि मनुष्य सुखाभिलाषी है अवस्था के साथ साथ यह आकांक्षायें सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती जाती हैं। आयु के चौथेपन तक पहुँचते न पहुँचते मनुष्य की पुत्रैषणा और वित्तैषणा करीब करीब शान्त हो जाती है पर हाँ लोकैषणा रूपी लहलहाती पौधे को अब वह अक्षुण्ण बनाने की तरफ झुकता है। वह उसे अपने सम्पत्ति जल से सिंचकर सुरक्षित अमर करना चाहता है। लोकैषणा रूपी तृष्णा अन्तिम दम तक मनुष्य का पल्ला पकड़े रहती है। फल स्वरूप एतदर्थ वह तन + मन + धन + जन सम्पत्ति को तिलांजलि

देने को समुद्यत रहता है।

यदि हम गलती नहीं करते तो डॉ ताम्बे भी इन्हीं व्यक्तियोंकी कोटिमे आते हैं। पुत्र पौत्र, धन सम्पत्ति की चाहसे वे निश्चयही ऊपर उठ चुके थे। परन्तु क्या वे भारतीय सभ्यताके सच्चे आदर्श वानप्रस्थकी मर्यादाओं को निभानेके लिये ही इस कुल मे पधारे थे।

इस चराचर जगत्की सम्पूर्ण अच्छाइयां गुण एककी जगह, किसी एकही व्यक्तिमे सन्निहित हो, केन्द्रित हों — जैसे यह बात असंभवही ऐसे ही डॉ साहबको जहा हम एक योग्य अनुभवी, कर्तव्यनिष्ठ, कुलके पक्के, आदर्शवादी व उत्साही मार्गदर्शकके रूपमे पाते है वहा हमे उनमे ~~ऐसी~~ आधारभूत दुर्बलताओंका भी आभास मिलताही।

हम तो चाहते हैं कि योग्य व्यक्तिओं को उच्चतम पदों की जिम्मेवारी सौंपी जाय, परन्तु पूर्व इसके व्यक्ति की परख भी अनिवार्य ही। यहां यह कहना कठिन है कि उसकी कसौटी क्या हो किन्तु इतना तो निर्विवाद ही है कि किसी भी संस्था में रहने वालों को अधिक नहीं तो कम से कम उच्चाधिकारियों का उसके आदर्शों में पूर्ण विश्वास हो। हमें दुःख से लिखना पड़ता है कि कई बार गुरुकुल जैसी सार्वजनिक संस्थाओं में ऐसे भी व्यक्तियों का अवाञ्छनीय से प्रवेश होजाता है जो कि उसके हित में अपना हित तथा उसके उच्चतम ध्येय व सिद्धान्तों को उच्चतम आदर्श न मानते हों। एक उदाहरण द्वारा शायद हम इसको ज़रा स्पष्ट कर सकते हैं —— एक व्यक्ति जो सेवक बनकर आया है वह संस्था के हेतु बड़े से बड़ा

आत्म विसर्जन कर सकताहै यह बात under stood हो परन्तु यदि कोई सेवाके नामपर यह विशेषपर रहकर भी सेवक कहलाना चाहताहै तो हमे स्वभावतः कहना पड़ता है कि There is something in the bottom. जिसका अपना अतिविलास जीवन संस्थाके आधारभूत सिद्धान्त (Plain training and high thinking". के प्रतिकूल है वह कहांतक विद्यार्थियोंको योग्य बनानेमें सहायक होगा - विज्ञ पाठक स्वयं विचार लें।

पारिस्थिति वश - किन्हीं कारणों से [illegible] किसी व्यक्तिको अकारण ही बदनाम करना हमारा उद्देश नहीं है। आत्मीय अनुभवों के आधार पर हम कहसकते हैं कि वृद्धावस्था प्राप्त पुरुष जिसे अपनी भूत सेवाओं के बदले आवश्यकता से अधिक वित्त मिलता हो, चाहे नाम हो चाहे, कभी अनुभव होनेसे अब अनपढ़ योग्य न चलती हो। अतः आत्मीयता होनेपरभी सातत्य पारिवारिक जीवनसे लो आए है मनुष्यका मुख्य व

शान्ति की अन्वेषणामे इतस्तत पर्यटन करना अधिक आश्चर्यजनक नही। इस आयु का प्रत्येक पुरुष और कम से कम हिन्दू (क्योंकि उनके लिये मसल मशहूर है हिन्दू वा कुजनिगड़ा मुसलमान का किशा) प्रवृत्तिवशात् अपना अस्तित्व, अपना महत्व, अपनी अनिवार्यता प्रकट करने मे ही सतत व्यापृत रहता है। जब वह प्राप्त वयस्क स्वजनों के उन्नति मार्गमे हो बाधक होता है तब तो उदार जात जननी" कहने के गौरव जनक वाली बात चरितार्थ करते हैं। चाहते हुए भी वे बड़ों की इज्जत सन्मान व आदर नही कर सकते। फलतः ऐसा व्यक्ति अपने अनुकूल गृह की तलाश मे निकलता है। इतना होने पर भी हम इसे मानव हृदय की स्वाभाविक कमजोरी ही कहेंगे। क्योंकि एक व्यक्ति जो अपने जीवन का बड़ा भाग उच्चतम अधिकारी के रूपमे बिता चुका हो, जिसने कभी बिना डर फटकार के

अपनेसे निचले अधिकारियोंसे प्रेम पूर्वक बातचीत करते है। ऐसे व्यक्तिको जब इन कमियोंके बावजूद, जहां कहीं पूज्य समझा जाता है, उसे सिर आंखोंपर रखा जाता है, ऐसी जगह मिलनेपर उसके पौबारह ही पांचोंकी में घी लगभग यही बात डाक्टर साहब के साथ हुई। हमारी कल्पना है कि शायद डाक्टर साहबका पारिवारिक जीवन ऐसा ही था कि उन्हें लगा हो। मन बहलानेके हेतु अपनी आयु का शेष भाग बिताने के लिये किसी संस्था या तीर्थकी तलाश करनी पड़ी थी। परिणाम स्वरूप डॉक्टर साहबका गुरुकुलमें शुभागमन हुआ। योग्यता व अध्यापनकी ही जिससे उनकी प्रतिष्ठा पूजा व सम्मान अवश्यंभावी था। किन्तु पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली पर अपार श्रद्धा व पूर्ण विश्वास रखने वाले व्यक्तिको पौरस्त्य शिक्षा प्रधान आयुर्वेद महाविद्यालयका अध्यक्ष बनाना कहांतक उचित था

और जो कुछ भी है। योग्यता की तो बात ही क्या
अत स्पष्ट विशेषके कोई लक्षण नजर न आए
परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि यह आग अन्दर ही
अन्दर नौबत्सायेण सुलगती रही जिस इस वज्रपातसे
समस्त आयुर्वेद विद्यालय संत्रस्त हो उठा।

[हो सकता है आज यह सब विद्यार्थियों
और उपाध्यायों को स्मरण नहो। इसलिये हम इन
सबसे प्रार्थना करेंगे कि वे सब महानुभाव जिनसे
जम १९३७ का आयुर्वेद महाविद्यालय तथा staff
अपने भारतवर्षके अवकाशों से पहिले के दिनों
को स्मरण करें। ताकि किसीको सन्देह न रहे]
कारण वे सब से स्वयं हुआ सम्पूर्ण समयकी
भोग करते थे किन्तु वर्तमान परिस्थितियों सदाहरण-
न्यायाधीश- कहना-कटिबद्ध और फिर संस्था

के प्रतिष्ठित पद पर रहते हुए भी उनकी न केवल आयुर्वेदीय ग्रंथों, शास्त्रों की ही नहीं अपितु मान्य आचार्यों के प्रति भी हीनता सूचक विचार प्रकट करना कहां तक संगत था यह हम अपने पाठकों पर ही छोड़ते हैं। यह तो लड़ाई में ठहर युग का प्रभाव था. उन दिनों जहां देखो वहां डाक्टर साहब ही डॉक्टर साहब गोचर होते थे। मानो वही संस्था के संचालक हों।

कहने को तो हम बहुत कुछ कह सकते हैं परन्तु समाज में आदि परम्परा और उपासना मान्यता से परे की चीज समझते हुए हम उनकी दिनरात चिकित्सा परायण - स्वायु डॉक्टर होने के विषय में उनकी खुले दिल से प्रशंसा करते हैं। अपने विभाग में उस निश्चित बातों पर चाहे बहुत जोर देना, साथ ना- होती हाजिरी (Tea Party) की सूचना प्रथा को

डालना, अपनेको सर्वप्रिय बनानेका स्पष्टतम उदाहरण है। रवैरगढ़कोर्टकी भी बुरी-चीज़नहीं। सुरक्षली Out Door Hospital में आनेवाले मरीज़ों के अतिरिक्त पंचकुटीके सार्वजनिक औषधालयोंमें भी अपनी सत्ता उपस्थित करना क्या कम योग्य होनेका चिह्न था। मिशनोंपर डॉक्टर साहिबकी ऐवसे रवर्च किये जाने वाले उनके विभागों हम क्या लिखें - इसके लिये तो वे मरीज़ भी बहुत हैं और बने रहेंगे।

इसलिये आपके डॉ. नाम्बेके प्रति अत्यन्त श्रद्धालु होते हुए भी हमें ये जो लिखना पड़ें उनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन करते हुए इसे गोचरहुए हैं; आपके सामने उपस्थित करती हैं हम निष्पक्षपाती होनेका दावा नहीं करते। हमारी आलोचना

एकाङ्गी और अपूर्ण है, अतः इससे
सहमत होना न होना आपके हाथमें है।
हमें आशा है पाठक वृन्द! हमारी इस
आलोचना को Sympathy की दृष्टि-
देखकर वस्तुतत्त्व तक पहुंचने का
प्रयास करेगा। अन्त में हम उस
आपके दयालु, परोपकारी एवं
आनन्द मूर्ति के चरणों में
श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते है।

सम्मानित डाक्टर जी॰ आर॰ ताम्बे के स्वर्गवास के बाद कुल-सभा में पास किया गया

शोक-प्रस्ताव.

सब कुलवासियों की यह शोकसभा गुरुकुल-आयुर्वेद-महाविद्यालय के अध्यक्ष, "श्रद्धानन्द-सेवाश्रम" के मुख्य चिकित्सक, वृद्ध, विद्वान्, अनुभवी, सेवावृत्ति से अथक कार्य्य करने वाले, गुरुकुल के हितचिन्तक डा॰ गोपाल रामचन्द्र ताम्बे के असामयिक देहावसान पर हार्दिक दुःख अनुभव करती है तथा परमपिता परमात्मा से उनकी सद्गति के लिए प्रार्थना करती है - और उनके दुखी परिवार से सहानुभूति प्रकट करती है। एवं आशा करती है कि उनके स्थान की पूर्ति के लिये सब कुलवासी प्रयत्न करेंगे और उनके अनुकरणीय जीवन से क्रियात्मक शिक्षा लेंगे।

गुरुकुल कांगड़ी।

क्रियाशील जीवन

(ले०- श्री प्रो० चन्द्रलाल जी शर्मा)

श्री ओंकार नामके कोई दो वर्ष हुए सेवा करने के उद्देश्य से गुरुकुल में पधारे। उन्होंने अत्यन्त उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त की हुई थी। वे न केवल चिकित्साशास्त्र की ही एक ऊँची डिग्री रखते थे, अपितु एम. ए. भी थे। उन्होंने अपनी योग्यता और परिश्रम से बहुत ऊँचे पद प्राप्त किये थे। वे कई वर्षों तक सरकारी सिविल सर्जन रहे थे — और इन्दौर, कच्छ आदि रियासतों में Chief Medical Officer भी रह चुके थे। एक लम्बे-लम्बे Career के पश्चात् जब वे Retire हुए—

तो उनका विचार हुआ कि शेष जीवन जाति की (जातीय-) सेवा में बिताया जाय। इस शुभ कार्य के लिये उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया और इस संस्था में वे आयुर्वेद-महाविद्यालय के अध्यक्ष और गुरुकुल के प्रधान चिकित्सक नियुक्त हुए। वे लगभग एक साल तक इस नये पद पर कार्य करते रहे। गरमी की छुट्टियों में कुछ दिनों के लिये भ्रमणार्थ बाहर गये, बड़ोदा में उनको अचानक किसी पुराने रोग ने घेर लिया और उनका आकस्मिक देहावसान होगया। इस प्रकार गुरुकुल की सेवा का जो उत्साह उनके जी में आया था — वह अपना पूरा प्रभाव न दिखा सका। वे गुरुकुल से कोई वेतन न लेते थे — गुरुकुल ने जो मकान उनको रहने के लिये दिया था उसका किराया भी अपनी जेब से देते थे।

डाक्टर साहब ने जेल में लगभग ६ मास

ही गुरुकुल की सेवा करने का अवसर दिया — परन्तु इस अल्पकाल में ही उन्होंने योग्यता, उत्साह, परिश्रम और त्याग की जो छटा दिखाई उसे कुलवासी कभी भूल नहीं सकते। एक साल के अन्दर ही उन्होंने बाहर के हस्पताल को एक शानदार चीज बना दिया। एक वार्ड के लिये उन्होंने अपनी जेब से दान दिया। उनके इस अत्यन्त उपयोगी कार्य को देख कर दानी महाशय भी प्रेरित हुए — और कुछ ही मास के अन्दर हस्पताल की इमारत कई गुना बढ़ गई। उस में Indoor Patients के लिये अनेक Beds बन गये। और चिकित्सा तथा परिचर्या के लिये आधुनिक वैज्ञानिक सामान उपस्थित होगये — जिन में से कुछ उन्होंने अपने पास से दिये थे। उन की योग्यता की ख्याति सुनकर सैकड़ों मरीज दूर-दूर से किलष्ट रोगों की चिकित्सा के लिये आने लगे और थोड़े ही दिनों में स्वस्थ होकर खुशी-खुशी घर लौटने लगे। गरीब मरीजों के लिये उन्हों ने

न केवल चिकित्सा – अपितु भोजन वस्त्रादि का भी समुचित प्रबन्ध किया।

Operations करने में वे इतने निपुण थे और बड़े-बड़े कठिन ऑपरेशन इतनी जल्दी और इतनी आसानी से कर डालते थे – जैसे कोई डाक्टर आँख में दवाई डाल देता है। परिणाम यह हुआ कि बीस-बीस ऑपरेशन रोज होने लगे और उनकी ख्याति एक तीव्र सुगन्ध की तरह पंचपुरी में फैल गई और शहर के सरकारी डाक्टर भी अपने हस्पताल के कठिन ऑपरेशन उनसे करवा कर स्वयं देखने लगे – तथा कठिन रोगों की चिकित्सा में उनसे परामर्श लेने लगे। पंचपुरी में दुःसाध्य रोगों के लिये लोग उन्हें बुलाने लगे। लोगों की सुविधा के लिये उन्होंने अपनी फीस केवल आठ-दस रुपये ही रखी – जो उनकी वास्तविक फीस का एक अंश-मात्र थी और यह फीस भी वे अपने पास न रखते थे – अपितु सारी की सारी बाहर के हस्पताल की उन्नति

के लिये गुरुकुल को दे देते थे। उनके यत्न का यह फल हुआ कि थोड़े ही समय में बाहिर के इस्पताल ने "श्रद्धानन्द मिशन इस्पताल" का रूप धारण कर लिया + और यह संस्था वे अपनी सेवा के लिये स्मारक के रूप में गुरुकुल में छोड़ गये।

सत्तर वर्ष की आयु के बावजूद डाक्टर साहब अथक काम करने वाले थे। रोज़ कई घण्टे आयुर्वेद महाविद्यालय के विद्यार्थियों को पढ़ाते, प्रातः-सायं और रात्रि को बाहिर के इस्पताल में काम करते, शहर के मरीज़ों को देखने जाते और जो समय बचता उसमें गुरुकुल के बागों और Lawns पर परिक्रमण करते रहते। शाम को गुरुकुल के लोग सैर के लिये बाहर निकलते तो उनको एक भव्य वृद्ध मूर्ति — जो जीवन भर उच्चतम पदों को अलंकृत करती रही थी — भ्रमण करते हुए मज़दूरों का पथप्रदर्शन और निरीक्षण करती हुई दिखाई देती।

कुलवासियों को उन्होंने कह रक्खा था कि जब किसी का जी चाहे - मुझे चिकित्सालय बुला ले।

डाक्टर साहब न केवल एक डाक्टर थे अपितु एक उच्च कोटि के विद्वान भी थे। जिन लोगों को शिक्षापटल में बैठकर उनकी बातें सुनने का अवसर मिला - वे जानते हैं कि उनकी विद्वता कितनी बहुमुखी थी। गुरुकुल में आने के पश्चात् उन्हों ने एक नवीन पुस्तक अपने पढ़ने के लिये मंगाई थी - जो भूगोल आदि विषयों से सम्बन्ध रखती थी। विद्यार्थियों में भी वे पढ़ने की एक आदत पैदा करना चाहते थे और उनकी सुविधा के लिये एक आयुर्वेदिक पुस्तकालय ('आयुर्वेदिक पुस्तकालय' नहीं, अपितु 'Students' Library'-सं.) बनाना चाहते थे। अपनी बहुत सी Allopathy तथा संस्कृत की पुस्तकें देकर उन्होंने उसका आरम्भ भी कर दिया था और अन्य पुस्तकें मंगाने तथा प्राप्त करने की फिकर में थे।

बातचीत करने में डाक्टर साहब विशेष दक्ष थे, घण्टों बातें करते हुए भी न थकते थे और सुनने वालों का यही जी चाहता था कि बस न करें। कभी थोड़ी देर के लिये किसी सभा में बोलने लगते थे,

तो बहुत मज़ेदार बातें सुनाते — जिससे उनके सामान्य ज्ञान और स्मरणशक्ति का परिचय मिलता। उनकी बातचीत में हास्यरस का भी विशेष मिश्रण रहता था — जो सुनने वालों के लिये बड़ा आकर्षक होता था।

ठाकुर साहब स्वभाव के बड़े मीठे थे — जिससे उन्होंने विद्यार्थियों, साथी प्रोफेसरों और अधिकारियों के दिलों में घर कर लिया था।

[illegible] पर [illegible]; जो कुलवासियों को ज्ञात है, सहानुभूतिपूर्ण व्यक्तियों के प्रति उनकी दयाशीलता का स्पष्ट प्रमाण है।

निस्सन्देह रूप में कहा जा सकता है कि ठाकुर साहब की गुरुकुल में उपस्थिति के समय संस्था को भी विशेष लाभ हुआ और आयुर्वेद महाविद्यालय तो अवश्यमेव एक बहुत अधिक आदरणीय (Respectable) चीज़ बन गया। ठाकुर साहब के जी में गुरुकुल की सेवा के लिये बहुत सी इच्छाएँ और उमंगें थीं — जो आकस्मिक मृत्यु ने उन्हें पूरी न होने दीं। पर गुरुकुल में उन के अल्पकालीन समय को याद करते हुए भी यही कहने को जी चाहता है कि —

"क्या ख़ूब आदमी था — ख़ुदा मग़फ़िरत करे।"

१८८

प्र
ल
य
[illegible]

अमर

साँझ का दिया —

टिमटिमाता हुआ — :

मन्द प्रकाश —

तीव्र तपस्या —

गहरी साध —

चमक पड़ने वाली लौ —

बाँकी शान —

अनूठी आन —

स्पृहणीय दान —

सञ्चित स्नेह —

चिरपालित अनुराग —।

... ...

कहानी

कुरुक्षेत्री

आई रात—
काली काली—
घना अँधेरा—,
राह न सूझा—
भटक गया राही ।

चमका दिया—
दिगन्त आलोकित हुए—
चमक बढती ही गई—
राह सूझ पडा—
राही राह चलने लगा ।

प्राची में सिन्दूरी उषा ने झाँका —
दिये की लौ धीमी पड़ने लगी —,
प्राची ने सिंगार किया,
सिन्दूरी टीके से —
दिया बुझने लगा — ।
बयार बहने लगी —
झोंका आया —
दिया बुझ गया —,
वही
साँझ का दिया ।

कुछ संस्मरण

(ले० श्री पुरुषोत्तमदेव मुल्तानी)

लगभग एक साल पुरानी बात है।

गर्मी के दिन थे, शाम का समय था – सूर्यास्त होने में अभी थोड़ी देर थी। मैं वनस्पति वाटिका में मजदूरों का काम देखने की ड्यूटी पर तैनात था। यह ड्यूटी डा० साहब ने लगाई थी। मैं उन्हीं की इन्तजार कर रहा था –। [illegible]

वे उन दिनों आयुर्वेद महाविद्यालय के अध्यक्ष थे। उन्हें हरेक काम में बहुत शौक था। वनस्पति-सम्बन्धी शौक तो उनका इतना बढ़ा हुआ था कि वे चलते-फिरते जहाँ भी जाते, अपने साथ रहने वाले

पण्डित रामेश्वर जी अनुबैरान्डम (रामेश्वर बेरी) से कहा करते कि देखो — यह कौनसी घास है; तोड़ो। तोड़ो॥ — इसे भी रख लो; तुम एक ऐसा Album बनाओ कि जिसमें इनसे कम स्थानीय सब प्रकार की घास हैं मनुष्य को देखने को मिलें। कहने का मतलब यह कि वनस्पतियों से उन्हें एक ख़ास शौक़ था।

हाँ, तो मैं कह रहा था कि मैं बाग़ में खड़ा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। इतने में ६ का घण्टा बजा और मैंने सोचा कि अब डाक्टर साहब निरीक्षणार्थ यहाँ आने को होंगे। और इतने में मैंने देखा कि वे अपने घर से निकल पड़े हैं। मैंने सोचा कि यहाँ ही आ रहे होंगे — और इसी बीच में मैं अपने काम में लग गया। लेकिन ½ घण्टा गुज़र गया और डाक्टर साहब यहाँ नहीं आए। मैंने कहा कि न मालूम क्या बात है — क्यों कि रोज़ वे प्रायः ६ बजे बाग़ में एक चक्कर लगा ही जाते थे। ख़ैर, इतने में माली आया और उसने बतलाया कि डॉक्टर साहब तो बाहर के हस्पताल में मरीज़ों को देखने गये हैं—

और वहाँ से अभी लौट रहे हैं। मैंने दूर महाविद्यालय-स्नानगृह के पास ही उन्हें आते देखा। मैंने सोचा कि अब तो आ ही रहे हैं — और मैं अपने काम में लग गया। लेकिन मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि आध-घण्टा और व्यतीत होने पर भी वे वहाँ न आये। तब मैं बाग से उठकर, जिस रास्ते से पहले मैंने उन्हें आते देखा था — उस ओर निहारने लगा; मैंने देखा कि ठक्कर साहब हाथ में कैंची लिये हुए छात्रों के विद्यालय के सामने के आम्रवृक्षों की अनियमित टहनियों को काट रहे हैं। यह देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि जब वे वनस्पति वाटिका में आये तो वहाँ आकर भी गुलाब की बेडौल टहनियों को ही काटने लगे। मैंने कहा कि मुझे काटने दीजिए, तो बोले, "नहीं-नहीं; तुम अपना काम — मुझे ही काम लेने दो।"

पाठकवृन्द! यह ऐसी एक ही बात नहीं है। ऐसी तो अनेकों घटनायें हैं — जिनसे यह एकदम स्पष्ट

है कि डाक्टर साहब में कितना त्याग और निरभिमानिता थी। सत्तर साल का बूढ़ा, रिटायर्ड सिविल सर्जन, सारी उम्र जितने अफसरी करते बिताई हो: वह भी ऐसा काम कर सकता है — मेरे विचार में ऐसी कल्पना आप में से बहुत से न कर सकेंगे। लेकिन यह घटना अक्षरशः सत्य है — जो हमारा और हमारे बहुत से युवकों का पथप्रदर्शन कर सकती है।

एक और भी सुनिये —

उन्हीं दिनों की बात है कि एक दिन इसी तरह बाग में मजदूर काम कर रहे थे और मैं डाक्टर साहब से बातें कर रहा था। बात बात में उन्होंने मेरे से कहा कि तुम इस वाटिका का एक नक्शा बनाओ। और फिर बोले — इन की Roads का क्या नाम रखोगे? फिर पूछने लगे कि यह बाग शुरू शुरू में किसने बनवाया है? मैंने कहा कि यह पं. सत्यव्रत जी के प्रयत्नों का फल है। इस पर कहने लगे, '— तो Main Road का नाम 'सत्यव्रत रोड' रखदें? और दूसरी सड़क का नाम

'देवशर्मा तेज' रखते हैं ?' यह सब उन्होंने हँसी में नहीं कहा— लेकिन सम्मानपूर्वक शब्दों में कहा — क्यों कि वह आदमी दूसरों की कदर करना जानता था।

कइयों को इनसे शिकायत रही होगी कि वे दूसरे की कदर करना नहीं जानते थे — लेकिन यदि आप उनके दिल से इस पर गौर करें तो आप इससे विपरीत परिणाम पर पहुँचेंगे।

इसी तरह एक दिन क्लास में बड़े-बड़े कहने लगे कि तुम आयुर्वेद के विद्यार्थियों की एक अलग Students' Ayurvedic Library होनी चाहिये इस पर अपने कॉलेज (जिस में वे पढ़ते थे) का हवाला देने लगे कि हमारे यहाँ भी हमें हमारे Vice-Principal ने इस प्रकार प्रोत्साहित किया था। और प्रारम्भ में जो पुस्तकालय केवल दो-चार किताबों के संग्रह में ही खोला गया था — आज उसमें आपको प्रत्येक विषय की अच्छी से अच्छी हजारों पुस्तकें और Latest Editions देखने को मिलेंगी। इसी तरह

मेरा विचार है कि तुम लोग भी अपने एक पुस्तकालय की स्थापना करो — उसमें तुम्हारे उपाध्याय और विद्यार्थी-गण भी अपना-अपना चन्दा दें और दानी महानुभावों से भी चन्दा माँगा जाय। धीरे-धीरे तुम लोगों का भी एक विशाल पुस्तकालय बन जायेगा।

अभी मैं उनके विचार सुनने में तल्लीन ही था और यह सोच रहा था कि गुरुकुल में तो क्या ऐसी Library खुलेगी — इतने में डाक्टर साहब बोले, 'अच्छा, तुम्हारी सभा ('आयुर्वेद परिषद्') का जो Secretary है — उसे बुला लाओ।' मैं झट दौड़कर ब्र० वेदव्रत जी ('ब्रह्मचारी जी' — तत्कालीन मन्त्री) को बुला लाया। उनसे डाक्टर साहब कहने लगे कि 'देखो भाई! इस-इस तरह हम एक पुस्तकालय की स्थापना करना चाहते हैं; उसके लिये तुम आज ही अपनी सभा की मीटिंग बुलाओ — जिसमें सब प्रोफ़ेसरों और विद्यार्थियों को निमन्त्रित करो।' मन्त्री ने कहा, 'जी अब तो शाम हो चली है, इसलिए अब तो सूचना देने का भी समय नहीं रहा है — अतएव अब तो कल ही ऐसा

कर सकूँगा।' खैर, उन्होंने अगले दिन खोलने की स्वीकृति दे दी और कहने लगे कि 'देखो! कल यह सब कुछ हो जाय।' ब्रह्मचारी जी 'हाँ' में उत्तर देकर चल दिये।

अगले दिन पण्डित सत्यव्रत जी के सभापतित्व में 'आयुर्वेद परिषद्' की मीटिंग हुई और इस 'प्रकार' एक फार्मेसी खोलने की घोषणा की गई। सबसे पूर्व ठाकुर साहब ने अपनी (५०) की पुस्तकें दान में देने की घोषणा की और उसी समय सबके बीच लाकर मन्त्री के हवाले कर दीं।

मैं अभी तक हैरान था, परेशान था और इस विचार में डूबा था कि गुरुकुल कांगड़ी में यह अनहोनी बात हो कैसे गई? क्योंकि गुरुकुलों में आज जो स्कीम बनती है — ५ साल बाद तो उसका नक्शा बनकर तैयार होता है और १० वें साल उसके लिये ईंटें बननी प्रारम्भ होती हैं। इसलिये हम लोगों के लिये यह एक नई चीज़ थी और काफ़ी प्रोत्साहन देने वाली थी।

इन्हीं सब मौलिक बातों की डा० शर्मा में विशेषता थी।

सन्ध्या की घड़ियों में

(ले०- श्री ब्रह्मदत्त त्रयोदश)

स जातो येन जातेन याति चक्रं समुन्नतिम्।
परिवर्त्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते॥

× × ×

था वह श्रद्धानन्द-बलिदान-दिवस। सुबह से ही सारे कुल में एक उमंग — एक जोश का राज्य था। सभी उत्साह से अपने-अपने कर्त्तव्य कार्य में लगे हुए थे — सभी का प्रोग्राम बड़ा व्यग्र प्रतीत होता था। कितना पवित्र यह दिवस — हमारे पुण्यश्लोक कुलपिता का पुण्यस्मृतिदिवस। उत्सव उसी से मनाया जाता था।

जलूस चला - महाविद्यालय प्रांगण

थे — एक स्नेहशील गति से। आगे थे श्री आचार्य जी और पीछे थे सब कुलवासी और उन सब के आगे थी कुलपताका — पवित्र विचारों की जननी, आन पर मर मिटने वालों की वत्सला माँ।

और जुलूस बढ़ा जा रहा था।

एक वृद्ध — जिसके सिर के बाल बिल्कुल सफेद हो गये थे, जिसके चेहरे का भाव बतला रहा था कि कितना सुख मिल रहा है उसे इस स्वर्गीयता में — का सिर सहसा उस पवित्र कुल-पताका के सामने झुक पड़ा। कितने आदर और श्रद्धा का भाव छिपा था इस क्रिया में — व्यक्ति को सहसा शुद्ध कर देने वाली सरलता और सहृदयता।

साथियों ने अँगुलियों से इशारा करके बतलाया, ये हैं एक रिटायर्ड सिविल सर्जन — गुरुकुल का सांगोपांग अध्ययन करने आये हैं ये, इनका विचार गुरुकुल को आजन्म सेवाव्रत का है।

बस फिर उस भरे हुए प्रोग्राम तथा जनसमर्द में यह बात छिप-सी गई।

× × ×

उसके बाद—

गुरुकुल कांगड़ी का उत्सव था। उसमें एक रात "स्वास्थ्य-व्यायाम-सम्मेलन" का प्रोग्राम था — जिसके सभापति थे लाहौर के सुप्रसिद्ध वैद्य पं. ठाकुरदत्त जी 'अमृतधारा'। उस सम्मेलन में कुछ प्रस्ताव स्वास्थ्य-व्यायाम-विषयक रखे गये थे। इतने में गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री प्रो. सत्यव्रत जी ने खड़े होकर कहा —: इस प्रस्ताव का समर्थन गुरुकुल-आयुर्वेद-महाविद्यालय के नवीन अध्यक्ष महोदय — जो कि अभी आये हैं — करेंगे।

कुछ दिनों से आयुर्वेद महाविद्यालय के अध्यक्ष के विषय में सुनते और विचारते

आते थे — सहसा यह सब को नाम सुनकर चौंके और उत्कण्ठित हो उठे।

नीले रंग का कोट पहने एक वृद्ध पुरुष उठा और अपनी टूटी-फूटी तथा स्पष्ट हिन्दी में उसने उस प्रस्ताव का समर्थन किया।

यह सब कुछ भी सब उस सब कुछ में विला गया।

× × ×

उसके बाद,— नवीन सत्र प्रारम्भ हुआ।

प्रार्थना के समय—

और तो सब कुछ वही है, पर आज वे श्री आचार्य जी के पास कौन बैठे हैं — नीले कोट वाले। और यह कुर्सी-मेज भी आज प्रार्थना के समय क्यों बिछी हुए हैं। अवश्य ही कोई नया प्रोग्राम है।

प्रार्थना समाप्त हुई। श्री आचार्य जी उठे और उन्होंने बड़े उल्लास से उद्घोषित

लिखा कि आज बहुत दिनों के बाद आयुर्वेद-महाविद्यालय का सुयोग अवसर से मिल गया है।

श्री प्रकाशविद्यालंकार जी ने उस जीवनकथा सुनाई - उनके विषय में।

और तब खड़े हुए वे। अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में उन्होंने बतलाया कि इस पावन संस्था को देखकर उन्हें हार्दिक प्रसन्नता हुई है। उन्होंने जीवन के कई उतार-चढ़ाव देखे हैं, उनका जीवन एक ऊँची चढ़ती-सी जाने वाली सीढ़ी रहा है — जिस पर कदम रखते हुए वे खूब ऊपर चढ़े हैं, उन्हें खूब धन और यश की प्राप्ति हुई है — यथेष्ट सुख मिला है। और...... — और अब तो उनके जीवन की सन्ध्या आ गई है, सांसारिकता से ऊब उत्पन्न हो गई है, यश और धन की भूख मिट गई है, पुत्रैषणा-लोकैषणा तथा और अधिक की वित्तैषणा की चाह नहीं रही है,

जीवन बन गया है — इस अवस्था में उन्हें पतितपावन भागीरथी, पवित्र हिमालय, प्रसिद्ध तीर्थ हरिद्वार और सबसे बढ़कर इस गुरुकुल जैसी पवित्र एवं आदर्श सेवासंस्था से बढ़ कर और क्या प्रेय हो सकता है। वे अपने जीवन की साँझ यहीं आर्य मानवता की सेवा में बितायेंगे और अपना तथा लोक का कल्याण करने की साधना करेंगे।

अन्तर के सबसे गहरे स्तर से निकले हुए शब्द थे ये।

इनके पीछे छिपी थी एक लम्बे जीवन की मूक कहानी — छिटकी हुई कामनायें — जाने कब की पाली हुई साध।

सब चुप थे - और एक गूँज कानों में आती थी —

'जीवन की ढलती साँझ का समर्पण।'

× × ×

सिर पर हैट,

पाश्चात्य वेश,

मुख पर गम्भीर मुद्रा,

साहबी वेश,

तेजी से उठते हुए क़दम —

— हाँ, यही हैं डा० गोपाल रामचन्द्र ताम्बे —

— आयुर्वेद महाविद्यालय के नये अध्यक्ष।

× × ×

हमारे द्वितीय वर्ष का प्रारम्भ इसी नव युग से हुआ।

नये प्रोग्राम में डा० ताम्बे ने हमारी श्रेणी का शरीरक्रियाविज्ञान (Physiology) लिया।

वे नये तरीके से पढ़ाते रहे। रोज़ नये से नये चित्र बना कर लाना; विषय समझाने के नये से नये ढंग अख़्तियार करना; बड़ी गम्भीरता को विदग्धता के साथ विषय समझाना,

और निदानात्मक दृष्टिबिन्दुओं पर विशेष ज़ोर देना; और इस सारी गम्भीरता के साथ ही साथ जब-तब मीठी चुटकियाँ लेना — यही सब कुछ विशेषता थी उनके पढ़ाने की। इतने दिन हमने उनसे पढ़ा — पर किसी दिन भी हमें नीरसता का बोध नहीं मालूम पड़ा; सदा सब कुछ नया, नये पाठ के साथ नयी उमंगें और उत्साह भी नई। हमें ऐसा लगता था — जैसे हम प्रतिदिन कुछ नये लिये चले जाते हैं।

कुछ दिनों बाद विषय समाप्त हो जाने पर दुहराया जाता। ढंग भी बड़ा विचित्र रहता — विद्यार्थियों से Class में ही विषय विचार करवाया जाता, चित्र बनवाये जाते।

इस सब कुछ से विद्यार्थी अपनी ज़िम्मेवारी समझता; आराम से तैयारी करके लाता, क्यों कि उसे सारी श्रेणी को वह विषय समझाना था और वह भी पूरी ज़िम्मेवारी के साथ। स्पष्ट है कि इससे विद्यार्थी में आगे के लिये उत्तरदायित्व समझना, विषय को स्पष्ट कर सकने की शक्ति, आत्म विश्वास, अध्यापन की योग्यता और सबसे ऊपर तो यह कि पुस्तक पढ़ने का चाव — इन सब का उत्तम विकास होता था; विद्यार्थी को इसके लिये पुस्तक का अवश्य रूप से सहारा लेना पड़ता और वह अपनी योग्यता तथा चिन्तनशक्ति को इस प्रकार बढ़ा सकता था। कितना सुन्दर और सुचारु ढंग था यह।

पढ़ाते समय उनकी हिन्दी बड़ी विचित्र रहती । 'अपन' शब्द तथा मराठी-पुट का बाहुल्य रहता । और इसीलिए कभी-कभी उस अजब सी हिन्दी को सुनकर हमारे हँसी छूट पड़ती — इस पर वे स्वयं भी हँस देते । पढ़ाई के समय यह हँसी और जादू सा प्रभाव करती — विषय भी हल्का हो जाता था ।

पढ़ाते-पढ़ाते जब-तब कहा करते — 'जब कोई चीज़ समझ में न आया करे - मेरे घर पर आओ, बच्चों की तरह वहाँ खेलते-कूदते रहो, फिर वह विषय समझो — एक बार, दो बार, दस बार मैं समझाऊँगा ; तुम सब मेरे बच्चे ही तो हो।'

कितना अपनत्व होता था इसमें — गुरु-शिष्य का आध्यात्मिक प्रेममय पिता-पुत्र-का-सा संबंध इसी अपनत्व में स्पष्ट झलकता था। और तब इससे दिल उल्लास से भर जाते।

एक सामान्य विद्यार्थी की प्रवृत्ति यह होती है कि वह दूसरों से सहानुभूति की आशा करता है। जब गम्भीर गुरु या अध्यापक उसके दुःखसुख भी सोच दिखाता है — तो वह विद्यार्थी उस का सदैव अनुगृहीत हो जाता है। पर डा० ताम्बे के इन शब्दों में तो छिपा था एक शाश्वत अपनत्व — जो कि आध्यात्मिक-गुरु-शिष्य-सम्बन्ध की जान है।

. पर, तो भी कभी-कभी विषय को वे पूर्णतया स्पष्ट नहीं करते थे। कई कारण हो सकते हैं इसमें — हो सकता है इनका अभ्यास पढ़ी पढ़ाई छोटी श्रेणी का हो, या वे इतने ऊँचे Standard को अपना करते हों, या इस ढंग को वे उचित ही न समझते हों, या क्रियात्मक दृष्टिबिन्दुओं से ही वे विषय का अध्ययन आवश्यक न समझते हों, या अपनी अनभ्यस्त हिन्दी में वे अपने विचार पूर्णतया स्पष्ट न कर पाते हों - आदि आदि। जो, कुछ भी हो — यह स्पष्ट है कि विद्यार्थियों को पाठ न समझ आने की शिकायत प्रायः रहा करती थी।

इतने दिनों में यह स्पष्ट हो गया था कि उन्हें हिन्दी भाषा के माध्यम में पढ़ाना कठिन पड़ जाता है — जब-तब विषय अस्पष्ट ही रह जाता है, और उन्हें English में अपने विचार स्पष्ट करने पड़ते हैं। इस सब से तंग आकर उन्होंने एक आन्दोलन खड़ा किया।— Medical College में पढ़ने का माध्यम English ही होना चाहिये — वे विषय इस से स्पष्ट हो जाते हैं, विभाग का Standard अंग्रेज़ी को समझने वाला बनाना चाहिये, अंग्रेज़ी में दिये गये lecture को सुनने के बाद English की पुस्तक में उस विषय को समझने में सुविधा रहती है, आदि - आदि।

बहुत बड़ा मौलिक परिवर्तन था यह – जिसकी नींव बनाई जा रही थी। शुरू में कुछ लोगों ने इसका विरोध किया – गुरुकुल का माध्यम सदा से हिन्दी रहा है, उसे छोड़ने नहीं देना चाहिये; English को माध्यम बनाना गुरुकुल के लिये घातक सिद्ध होगा; English जैसी विदेशी भाषा में विषय को समझने में 'पहले भाषा को समझना और फिर विषय को समझना' – इस प्रकार का दुहरा श्रम विद्यार्थी को करना पड़ता है – और इसीलिये तो इस ~~English~~ System के विरोध में गुरुकुल की स्थापना हुई थी, आदि – आदि।

अस्तु, इस महत्त्वपूर्ण विषय पर विचार करने के लिये 'आयुर्वेद परिषद्' की

कार्यकारिणी की बैठक बुलाई गई - जिसमें सब उपाध्यक्ष-महामन्त्रियों को भी आमन्त्रित किया गया। बैठक बैठी। उन दिनों कार्यकारिणी में कुटप्पा ओमी की ओर से मैं भी सदस्य था। उपरान्त सबने ने उस बैठक में अपने विचार स्पष्ट करने शुरू किये — प्रतियाँ और उद्वेले चुके थे, पर तो भी यह सब कुछ अप्रिय सा लग रहा था — क्यों कि जिस विदेशी भाषा को जैसे तैसे गुरुकुल-सीमा से बाहर निकालने के लिये कोशिश की गई थी उसी विदेशी भाषा को फिर शिक्षा में ला घसीटने का उपक्रम था यह। भिन्न-भिन्न विचार रखे गये — हिन्दी में भी उस उच्चशिक्षा को दिया जा सकता है; कुछ वर्ष

पहले जापान में भी यह शिक्षा की समस्या खड़ी हुई थी, कोई जापानी भाषा का नाम तक नहीं जानता था, बिल्कुल गँवारू समझा थी जापानी, कोई उसे नहीं पूछता था, पर स्वदेश शिक्षा प्रेमियों ने आज उसे यहाँ तक ला पहुँचाया है कि आज संसार की सर्वोत्तम सर्वोच्च शिक्षा सम्पूर्ण जापान भर में जापानी भाषा द्वारा ही दी जाती है — आदि-आदि। खैर, इस महत्वपूर्ण विषय में कोई निर्णय करने से पहिले सब विद्यार्थियों की सम्मिलित बैठक को उसकी सम्मति की माँग पेश की गई - तथा पास हो गई।

सभी विद्यार्थियों (स्वदेशीय-सभी अन्तर्देशीय विद्यार्थियों) की आम सम्मिलित बैठक हुई। उसमें भी डा० [illegible] बोले और बड़ी हँसी-मजाक, चुटकुलों तथा कविताओं के साथ उन्होंने अपना पक्ष सबके सामने रखा। बड़े विवाद के बाद अन्त में शायद यह तय हुआ कि परीक्षण के तौर पर कुछ दिनों के लिये यह कर देखा जाय।

और इसके बाद यह महत्वपूर्ण और चौंका देनेवाला परिवर्तन यों ही कर दिया गया।

English में Lecture देना बुरा नहीं, कठिन भी नहीं, समझा भी खूब जा सकता है—

पर इसमें ज्यादा यह थी कि उन्होंने एक प्रगतिशील विचार तथा आध्यात्मिक सिद्धान्त का मेल होता था इस नये परिवर्तन से — इसी कारण कुछ क्षणों में अनजान था इनकी प्रति।

खैर, वे तो डाक्टर लगके इसमें लगभग 40 मिनट English में बोलते और फिर बाकी बचे 20 मिनट हिन्दी में वही विषय समझाते।

और इसी प्रकार हमारी पाठ्य-पुस्तक को उन्होंने 2 साल में लगभग 4 बार पढ़ाया। कभी स्वयं पढ़ते, कभी विद्यार्थियों से प्रश्न पूछते — और इसी प्रकार पाठ पढ़ाते,

इस प्रकार आप का इसमें 'अथ' और 'इति' का पता, परीक्षा में क्या था — यह हम में से किसी को भी विश्वास से नहीं मालूम था, इसमें हमारा दोष भी कहा जा सकता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि हम उनके पढ़ाने से विषय को Theoretical दृष्टि से पूर्णतया अधिगत नहीं कर पाते थे ; पर उनके क्रियात्मक पक्ष पर हमें पूरा भरोसा था। हम सोचा करते, हम बड़े सौभाग्यशाली हैं कि डाक्टर साहब जैसे सुयोग्य एवं अनुभवी सिविल सर्जन उस समय आये - जब कि हम अभी द्वितीय वर्ष में हैं - अर्थात् चिकित्सा-विषयक क्रियात्मक से बची हैं ; डा० साहब

उपर्युक्त आवश्यक प्रश्न हमारे चिकित्साविषयक क्रियात्मक विभाग में कर देंगे - तब तक हम तृतीय वर्ष में चढ़ जायेंगे, और तब डा० साहब से लूट-लूट कर क्रियात्मक चिकित्साविषयक लाभ उठायेंगे। कितनी खुशी होती थी तब हमें इस प्रतीक्षामयी स्थिति आशा से!

हम अपने आश्रम से पीछे देखा करते, तब नई-नई कोठें लगीं और "श्रद्धानन्द सेवाश्रम" (यह उन्हीं का दिया हुआ नाम है) को जाते। "श्रद्धानन्द-सेवाश्रम" जाने-आने वालों की इतनी भीड़ देखी जाती कि आश्चर्य होता था। इस चिकित्सालय में पहले ही से

कर भी थोड़े ही बीमार लाये जा सकते थे - उस

में उन अनावश्यकसी रहती भीड़ देख कर

आँखें खुले अँगुली दबानी पड़ती। इतना परिवर्तन

हो गया था उस चिकित्सालय में - जिसका

अब नया नाम था, "श्रद्धानन्द-सेवाश्रम";

आत्म-कल्प ही तो कहेंगे इसे!

चिकित्सालय में Major

Operations इतने होते थे कि प्रायः प्रतिदिन

इस प्रकार - आज अमुक आपरेशन होगा,

आज अमुक, आज अमुक। (सायटिस् आदि

के लिये सफलता पूर्वक Injection भी दिये

जाते थे। प्रतिदिन प्रत्येक अनुभव करते

कि कुछ न कुछ जानकारी मिलने से जोरशोर से होते हैं।

वार्ड बन रहे हैं, शय्याओं (Beds) को भरा जा रहा है, बहिरंगविभाग और शय्याओं को बढ़ाया जा रहा है, नये-नये औज़ार और यन्त्रादि आ रहे हैं, चर्चाएँ और उनका पेशा बन रहा है, जमघट लग रहा है, फुलवारी सींची जा रही है, मरीज़ के आने के लिये रास्ता तैयार हो रहा है, कालेज-बिल्डिंग की स्कीम बन रही है, वनस्पतिवाटिका (Botanical Garden) को उगाया जा रहा है, स्वयं खड़े होकर कैंचियों से घास कटवाई जाती है, मज़दूरों से काम करवाया जा रहा है — ग़रज़ यह कि चारों तरफ़ चहलपहल रहती, प्रत्येक कार्य ने उद्यम के साथ एक-न-एक नई

चीज़ दिखाई देती । जितनी खुशी होती थी तब तक सब कुछ को देख कर ।

इस मन में सोचते, प्रणाल ने ऐसा स्वाभावी उपहार पाने के लिए मेला है इस बूढ़े - पर अंगों के जवान करिश्मे थे।

और यहीं तक उनका कार्य भी न सीमित नहीं था। जिनके आयुर्वेद महाविद्यालय को उन्नत [redacted] एवं अप-टू-डेट बनाने की धुन उन्हें लगी रहती।

इतना उत्साह था कि जवान भी लजा जाते ।

अच्छे तो राजा, दिला दिया उसने।

× × ×

वह हमारा पिता था और हम थे उसके बच्चे — कभी उसके ऊपर चढ़ते और कभी फिर भाग जाते, और वह भी हमसे बिल्कुल पिता जैसा व्यवहार करता। कभी गर्मी-सर्दी बरसात और फिर हँसी-खुशी हमारे साथ खेलने लग जाता — यही तो उसके स्नेहमय पितृत्व का द्योतक था।

× × ×

बड़ों का काम होता है- सेवा सिखाना। यह काम वे कर चुके थे। जब वे आते थे - तब आयुर्वेद महाविद्यालय अपनी बहुत पिछड़ी हुई हालत में था, और तब उन्होंने उस उन्नति के सीढ़ी पर कदम रख दी थी — इतना कठिन था, उसे पकड़ना और उस पर लपक दौड़ना — सीढ़ी भी

सड़क भी दिखाई देती थी वह। पर इस समय पर न चेते, हमने समझा कि यह ज्योति— जो हमें मार्ग दिखा रही है, सदा इसी तरह चमकती जायगी।

× × ×

पर, आह! आ ही गया वह अमंगल दिन।

श्रावणमास के दिन थे, सब लोग छुट्टी मना रहे थे और तभी हमने अखबार में पढ़ा कि गुरुकुल अम्बेर गायकवाड़ के अध्यक्ष डाक्टर लाल्के का बड़ौदा में स्वर्गवास होगया है; उनके पितामह अंग्रेजी के पहले पुरुष कहा जाता था, वे बम्बई ऑपरेशन कराने गये थे और बीच में ही बड़ौदा में उनका देहान्त होगया।

जितना हृदयविदारक था यह दारुण हाहाकार — उतनी ही निष्फलित आशाओं और उमंगों पर पानी फेर देने वाला। सचमुच ही दिल दहल उठा।

× × ×

आज उनके उद्यान व निकुंज में बुलबुल हैं — उनकी फुलवारी में उन्हीं के हाथ से बोये हुए कोमल उद्यान खड़े हैं, वे लजविह्वल बड़े बड़े फूल उगकर खड़े हैं, और झुक रहे हैं पर सब कुछ — एक [illegible] सूनी करुण कहानी। देखो जब सब कुछ शान्तसौम्य होता है, और चन्द्रमा अपनी उदास मुस्कराहट से चाँदनी छिटका रहा होता है — तब ये बड़े बड़े फूल अपनी उस करुण कहानी को धीरे-धीरे कह के और उस — उनकी मूर्ति को स्मरण करके रोते हैं।

इन शान्त क्षण से अज्ञानवश सेवाग्राम

मैं एक पुँज सुन पड़ी है —:

अटक गया था मोती —

काँच का दिया चमका —

मोती को मोती सूझ गया —

उसने आत्मरूपी रूप अपना व्यक्तित्व

प्रबल हवा का झोंका आया —

और वह खिलखिलाता हुआ दिया गुल

होगया —

सदा के लिये।

सम्पादकीय (२२५-२६२)

यह अङ्क — 'ताम्बे-अङ्क'

"आयुर्वेद" का यह अङ्क हम "ताम्बे-अंक" के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं।

आज यह "ताम्बे अङ्क" प्रेमी पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए हमें बड़ा हर्ष है। यह जैसा कुछ है— इसको अपनाना आपका कर्तव्य है।

'आज 23 सितम्बर को डा० ताम्बे का मृत्यु-दिवस है – गतवर्ष आज के ही दिन आपने बड़ौदा में अपनी इहलीला विसर्जन की थी। उन्हीं डा० गोपाल रामचन्द्र ताम्बे की स्मृति में आज के दिन "आयुर्वेद" का यह अङ्क निकाला जा रहा है। डा० ताम्बे गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय में एक नये प्राण थे, नयी चेतना थे, चमक के प्रतीक थे। आपने उसमें एक नयी चेतना फूँकनी चाही और इसीलिये आज उनकी अथक सेवा के प्रति श्रद्धाञ्जलि के रूप में हम यह अङ्क निकाल रहे हैं।

वास्तव में तो यह अङ्क गतवर्ष ही आकस्[illegible] के स्वर्गवास के बाद ही निकलना चाहिये था —

परन्तु न जाने क्यों तब तत्कालीन सम्पादक महानुभाव के मन में यह बात आई । और यह बात कुछ अधिक अस्वाभाविक भी नहीं है, क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि किसी विशाल (या विपुल) की याद तब उसके होने में होती है जब कि उसका अभाव अनुभव होता है । और "आयुर्वेद महाविद्यालय" में डा० साहब का अभाव तो एक ऐसी चीज़ है — जिसकी उपेक्षा बिल्कुल नहीं की जा सकती । इसीलिये शायद इतनी देर में (मृत्यु के १ वर्ष बाद) यह अङ्क निकल रहा है ।

हम इस अङ्क को १९३८ के मई मास के अन्त या जून मास के प्रथम सप्ताह में ही निकालने का विचार रखते थे - परन्तु दुर्भाग्यवश ग्रीष्मावकाश का मसला आ गया ऐसी अड़चन बैठ गया कि हमें अपने आयोजन प्रोग्राम को पूरा कर सकना सर्वथा असम्भव जँचा। उस समय भी हमने विभिन्न संस्थाओं, विद्वान् डाक्टर साहब के मित्रों, उनसे सम्बन्ध या उनकी अन्य पत्रपत्रिकाओं उनके सम्बन्धियों तथा स्थानीय महानुभावों से लेखादि-

बहुत पहले प्रारम्भ कर दिया था – पर इस ग्रीष्मावकाश की अड़चन
के कारण इसे अथवा पूर्णतः स्थगित करना पड़ा। पुनः
ग्रीष्मावकाश के बाद हमने फिर इस कार्य को प्रारम्भ किया
पर किन्हीं अनिवार्य कारणों से पत्रिका नहीं समाप्त कर
सके। छुट्टियाँ आती गईं और इस कार्य को बड़ी
उलझनों में पड़ना पड़ा। खैर, हमने फिर इसे
आज़ाद भारत के स्वाधीनता दिवस (१५ अगस्त) पर ही
प्रकाशित करना उचित समझा। पर वार्षिक परीक्षा
का प्रारम्भ भी इसी दिन से ही था – अतः
कहने की आवश्यकता नहीं कि किन्हीं कठिनाइयों
को पार कर के इसे उसी दिन आंशिक
रूप से। इसे ~~पूर्णाकार~~ यथाशीघ्र प्रकाशित
करना पड़ा। हमें विश्वास है कि यदि हमें समय की
सुविधा मिलती – तो हम इस अङ्क को और सुन्दर
पूर्ण रूप से एवं प्रयत्नपूर्वक निकाल सकते।

डाक्टर ताम्बे

डाक्टर ताम्बे के विषय में अधिकतर विवरण विस्तार से इस पत्रिका में भिन्न-भिन्न लेखकों ने लिखा है। हमारा विचार था कि हम डाक्टर साहब की जीवन कहानी प्रकाशित करें। इस के लिये हमने अनेक प्रयत्न किया, उनके संबंधियों मित्रों-पत्रपत्रिकाओं तथा अन्य तत्सम्बद्ध संस्थाओं से कई बार पत्रव्यवहार किया परन्तु हमें समुचित उत्तर तथा अधिक सामग्री भी प्राप्त हुई — यहाँ तक कि डाक्टर साहब का जन्मदिवस, बाल्यकाल, शिक्षाकाल आदि किसी के विषय में भी कुछ विशेष नहीं पता चल सका। फिर भी कुछ विवरण जो हमें प्राप्त हो सका है — वह हम संक्षेप से देते हैं।—

डा० गोपाल ताम्बे मराठे थे। आप का जन्मप्रदेश बड़ौदा था। आपके पिता का नाम था रामचन्द्रराव ताम्बे — आपका पूरा नाम था गोपाल राव रामचन्द्रराव ताम्बे। आप बचपन में बड़े नटखटी

थे, पढ़ने में सदा प्रतिभाशाली रहे। आपके नटखटपन के समय अध्यापक लोग परेशान रहते थे। आप ने बड़ी सफलता से अपना स्कूल का जीवन बिताकर College में प्रवेश किया। College में भी जहाँ आप अच्छे प्रतिभाशाली माने जाते थे — वहाँ आप की गिनती प्रथम श्रेणी के चालाक, नटखटी और हंसाने वाले लड़कों में होती थी। यहाँ कई बार आपने कई Movements चलाईं और उनके अगुआ बने। कोई चीज़ शुरू करना व औरों को उसका अगुआ बनना - यह आपकी शुरू से ही आदत थी। कालेज में जब प्रोफ़ेसरों या प्रिन्सिपल को कोई चीज़ विद्यार्थियों के समक्ष रखनी होती थी तो इन गोपाल महोदय से सर्वप्रथम बात करनी पड़ती थी - और तब कहीं जाकर वे अन्य विद्यार्थियों को अपनी चीज़ के लिये मना सकते थे। कालेज की कोई ऐसी तजवीज़ इस्तेमाल न होती - जिसमें गोपालजी का हाथ न हो।

पर इस नटखटपन के अलावा गोपालजी में अपने मान्य गुरुजनों के प्रति सम्मान

और श्रद्धा का भाव भी कूट कूट कर भरा था। इधर देखिये तो वहाँ बैठा है छोर मचाता हुआ गोपालराव जहाँ वे लोग बैठे चमीगोइयाँ कर रहे हैं, और उधर देखिये तो वह खड़ा है गम्भीर ज्ञानमुद्रा बालक गोपालराव — बड़ी नम्रता से अपने गुरु के प्रति आदर प्रदर्शित करता हुआ। सीमा के, (Extremes के), विरोधी भावों का इतना सुन्दर सम्बन्ध इतनी छोटी अवस्था में कहीं-कहीं ही पाया जाता है।

विद्यार्थी जीवन में ऐसा सफल भार कुछ लोग ही कमा सकते हैं। और गोपालराव ही यही चीज अन्त तक आपकी धरोहर रही, जिसके जगत के संघर्ष में आगे-और बढ़ चले।

सबसे पहले आपने B.Sc. की डिग्री Honours में ली और M. A क्लास में दाखिल होगये। आपको संस्कृत से प्रारम्भ से ही बड़ा ~~[illegible]~~ प्रेम था। प्रत्येक महाराष्ट्रीय व्यक्ति को संस्कृत से बड़ा प्रेम होता है, वह संस्कृत की उच्च योग्यता अनिवार्य

रूप से आकर्षित करता है। अत महाराष्ट्रीय होने के नाते आपको भी संस्कृत से प्रेम होना अनिवार्य ही था — यही कारण है कि स्वतन्त्र, मौजी स्वभाव वाली मनोवृत्ति वाले होते हुए भी आपने M.A. में संस्कृत को पाठ्य विषय के रूप में लिया।

M.A पास करके आप Medical Line में चले गये और Bombay University से आपने L. M. & S. (Licentiate of Medicine & Surgery) पास किया। तदनन्तर आपने कुछ समय बाद बम्बई में Private Practice शुरू करदी।

इन्हीं दिनों यूरोप में महायुद्ध छिड़ गया। भारत से डाक्टर लोग भी लगातार यूरोप भेजे जाने लगे - जिससे यहाँ भारत में बहुत से पद खाली होगये। डा० साम्बे ऐसे ही एक रिक्त पद पर मध्यप्रान्त में नियुक्त किये गये और महायुद्ध की समाप्ति तक वहीं कार्य करते रहे। इसी बीच आपकी सेवाओं के एवज में आपको द्वितीय श्रेणी का K-I-H (Kaiser-

I-Hind = 'हिन्दुस्तान का बहादुर') प्रदान किया गया।
महायुद्ध की समाप्ति के लगभग आपने अपनी स्वास्थ्य-खराबी के कारण तथा नौकरी की कुप्रबन्धकता से तंग आकर त्यागपत्र दे दिया। [illegible] Indore State में State Surgeon (Chief Medical Officer) नियुक्त होकर चले गये और वहाँ कार्य करते रहे। वहाँ आपने कुछ अध्यापन कार्य भी किया। 16 वर्ष तक आप इन्दौर में रहे और तदनन्तर वहाँ से छुट्टी लेकर तथा नौकरी को छोड़कर स्वतन्त्र हो गये।

इसके बाद 4 वर्ष तक आप नागपुर में Surgeon के रूप में Private Practice करते रहे और आपने खूब यश तथा धन कमाया। वहाँ से आप कच्छ स्टेट में चीफ मेडिकल आफिसर के तौर पर बुलाये गये — जहाँ आप 10 वर्ष तक कार्य करते रहे और तदनन्तर आप सेवा से Retired हो गये।

वहाँ की सेवा से Retired होकर आप का उद्देश्य अपनी जीवनसंध्या को किसी लोकोपकारी

संसार में किसी पवित्र तीर्थ या पवित्र नदी के किनारे मिलने का था — आप उसी उद्देश्य में इधर-उधर भटकते रहे। इसी सिलसिले में आप २ वर्ष तक कराची (जो कि कच्छी-गुजराती-सिन्धी तथा भाषाओं का गढ़ है) में कार्य करते रहे।

अब तक के सम्पूर्ण जीवन में उत्कट सामाजिक प्रवृत्ति रहे। समाज में जनसेवा और उसके हेतु उद्यम करने से उनका प्रेम रहा। धन कमाना भी उनका एक अनिवार्य उद्देश्य बना रहा। कराची में भी आप सम्मिलित बने रहे। वहाँ आप एक पत्र (सम्भवतः "Sind Observer") के सम्पादकमण्डल में भी रहे। इसके अतिरिक्त कई संस्थाओं (यथा "महाराष्ट्रमित्र-मण्डल", "Rotary Club" आदि) के आप प्रतिष्ठित सदस्य भी रहे — मतलब यह कि आपने कराची में अपना उत्तम सामाजिक जीवन बिताया।

ए. अब जीवन की सन्ध्या आ चली

थी। ऐहिक लोकैषणा - पुत्रैषणा तथा और अधिक वित्तैषणा की चाह नहीं रही थी। अब तो किसी कोने में - किसी पवित्र स्थान में - बैठकर पीड़ित मानवता की सेवा करने की साध दिल में जगी थी और वहीं उस पवित्र तीर्थ में प्राणविसर्जन कर देने की इच्छा थी; पर अभी तक कोई सुयोग मिल नहीं रहा था। प्यासा पानी ढूँढ रहा था - पर अभी तक पानी नहीं मिला था। दिन भर का थका प्यासा बटोही पानी के लिये भटक रहा था।

इन्हीं दिनों गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता की ओर से गुरुकुल के बाहर चिकित्सालय में गरीब और आर्त मानवता की सहायता करने के विषय में विभिन्न अखबारों में अपील प्रकाशित हुई - और डा० सम्भे ने भी उसे पढ़ा। बस, प्यासे को पानी मिल गया। डा० सम्भे ने गुरुकुल के अधिकारियों से पत्रव्यवहार किया और अपनी आजीवन सेवायें गुरुकुल के प्रति आर्त मानवता

की सहायता से जनता में अर्पित करने का यत्न किया।
आपकी बातचीत गौरव के बाद गुरुकुल में आप
३१ मार्च या १ अप्रैल १९२६ (तदनुसार १८ या २० चैत्र १९८३)
के दिन "गुरुकुल-आयुर्वेद-महाविद्यालय" के
अध्यक्ष तथा "गुरुकुल चिकित्सालय" के मुख्य
चिकित्सक (Chief Medical Officer) के पद में
नियुक्त होगये।

अब तक आपने क्या किया, यह
आपकी निम्न पंक्तियों से स्पष्ट हो जायगा - जो कि
आपने अपने एक मित्र को पत्र लिखते हुए लिखी थीं:

"इन तीस वर्षों में मैंने बहुत से स्थान
बदले हैं। विविध प्रान्त व सामर्थ्यानुसार विभिन्न
सरकारों की सेवा की है। १८९६ से १९२० तक
मैंने मध्यप्रान्त में सिविल सर्विस की हैसियत से
ब्रिटिश-सरकार की। १९२० में महायुद्ध की समाप्ति
पर युद्ध से लौटे हुए उनके लिए सिविल अधिकारियों
के लिये जगह खाली करने को जब नियुक्त मैंने

त्यागपत्र दे दिया। १९२० से १९२४ तक मैंने आगरा में वैयक्तिक (प्राइवेट) शल्यचिकित्सक (सर्जन) के रूप में कार्य किया और खूब अच्छा किया।

"कच्छ स्टेट के आग्रह से मैं वहाँ 'चीफ मेडिकल आफीसर' की हैसियत से चला गया। कच्छ में मैंने १० वर्ष सेवा की और फिर उस सेवा से विश्रान्ति लेली।

"मैं चाहता था कि मैं किसी धर्मार्थ चिकित्सालय व औषधालय को हाथ में ले कर अवैतनिक सेवा करूँ और यथासम्भव वह किसी पवित्र स्थान या तीर्थ पर हो, किन्तु सब जानते हैं कि मात्र इच्छा या माँग करने से ही प्रत्येक मनोवाञ्छित वस्तु या अवसर नहीं मिल जाया करता। मनुष्य आखिर अपने भाग्य का अनुचर है, वह भाग्य उसे बनादे या बिगाड़ दे।

"दो साल मैंने कराची में कार्य करते हुए, प्रतीक्षा में व्यतीत किये और तब मुझे

यह वर्तमान स्वर्गीय अवसर मिला — जिस की मुझे कामना थी। भगवान् की इच्छा से, अकस्मात् ही गुरुकुल के अधिकारियों से मेरा सम्पर्क होगया — और कुछ दिनके सविचार पत्रव्यवहार के बाद मैं आर्यसमाज द्वारा प्रतिष्ठित और प्रधान-रूप से संचालित इस शिक्षा-संस्था में सम्मिलित होगया।

"गुरुकुल के अधिकारियों ने मुझे हरिद्वार के इस गुरुकुल कां- विश्वविद्यालय में आयुर्वेद-महाविद्यालय का अध्यक्ष नियुक्त किया है। गत पहली एप्रिल को मैंने अवैतनिक अध्यक्ष के रूप में इस नियुक्ति को स्वीकार किया है। और जान्हवी के इस पवित्र तट पर मैं अपना कर्तव्य प्रेम और हितभावना से कर रहा हूँ।"

इसके अतिरिक्त गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री [illegible] जी ने सर्वप्रथम पत्र उन्होंने 'आवेदनपत्र' के रूप में भेजा था — उसकी कुछ पंक्तियाँ भी उनके विनम्र [illegible]

" .... इसके साथ ही मैं आपको विनयपूर्वक यह भी बतला देना चाहता हूँ कि मैं Bombay University का ४० वर्ष पूर्व का एक Medical Graduate हूँ। मैंने प्रतिष्ठा (Honours) के साथ M.A., B.Sc., L.M. & S. की उपाधियाँ पाई हैं। मैं १८९८ में चिकित्साविज्ञान (Medicine) का स्नातक (Graduate) बना। १८९९ से १९०२ तक मैं Grant Medical College, Bombay में नियुक्ति ('सहायक अध्यापक'— सं०) पर रहा तथा साथ ही एक इतने समय Bombay Municipality के प्लेग की ड्यूटी पर रहा।

"१९०२ में मैं Indore State के State-Surgeon (वही पद- जो कि अन्य स्थानों पर Chief Medical Officer कहे) के रूप में नियुक्त हुआ। वहाँ मैं १९१६ तक (अर्थात् १४-१५ वर्ष) काम करता रहा और फिर मैंने उस पद से त्याग दे दिया। उसकी

मैं यूरोपीय महायुद्ध के दिनों ब्रिटिश भारत में मध्य प्रान्तमें Civil Surgeon के पद पर नियुक्त कर लिया गया। इस पद पर मैं १९२० तक रहा और युद्ध की समाप्ति के समय मैंने फिर उस स्थान से त्यागपत्र दे दिया - क्योंकि स्थायी पदों को स्थायी हाथों ने सम्भालना शुरू कर दिया था। तब मैंने नागपुर में Private Practice प्रारम्भ की और १९२४ की समाप्ति तक वहीं करता रहा। उसके बाद इन्दौर स्टेट ने मुझे Chief Medical Officer का पद प्रदान किया, जिसे मैंने स्वीकार कर लिया। पूरे १० वर्ष तक मैं इस पद पर काम करता रहा - और तब इससे १९३४में रिटायर्ड होगया। गत दो वर्षों में मैं करांची में प्राइवेट प्रेक्टिस करता रहा - जिसमें मैंने रुपया कमाने की अपेक्षा अपने को व्यस्त रहने का उद्देश्य अधिक रखा। जब कि मैं Indore State में सर्विस पर था - तब मुझे सार्वजनिक सेवाओं के लिये 2nd Class Kaiser-I-Hind (K-I-H.)

Medal पारितोषिक रूप में दिया गया था। थोड़े में यह मेरे विगत जीवन की कहानी है। अब मैं इसी के बल में हूँ और अनुशीलन मेरा स्वास्थ्य उत्तम है। मेरी प्रबल इच्छाएँ कि मैं अपने जीवन के शेष दिनों को दीनों की सेवा में अर्पित करूँ और इस उद्देश्य से मैं अपनी सभी ~~सभी~~ कार्यविधियाँ (Activities) को इस दिशा में ले जा रहा हूँ।" आदि- आदि।

उपरोक्त उद्धरणों से उनका क्रियाशील जीवन स्पष्ट हो जाता है - जिसका अधिकांश भाग वे गुरुकुल में बिताने आये।

यहाँ गुरुकुल - आयुर्वेद - महाविद्यालय को उन्नत करने के लिये आपने बहुत कुछ प्रयत्न किया। वृद्ध होते हुए भी आप दिन भर काम में जुटे रहते। प्रातः उठकर नित्य कर्म से निवृत्त होने और College चले जाते। यहाँ प्रातः ८ से १२ बजे तक आप बाह्य चिकित्सालय में चले जाते - वहाँ कुलवासी चिकित्सा का अभ्यास करते थे।

आप यहाँ प्रतिदिन Major & Minor Operations करते रहते - जिससे विद्यार्थियों को बहुत लाभ हुआ। इसके बाद आप [illegible] जामनगर से छुट्टी पाकर आराम करने अपने उपचार के प्रयोग में जुट जाते। दोपहर में यदि कोई आपके यहाँ जाता तो आप बराबर पत्तों को रगड़ते मिलते - या अन्य कोई काम करते ही पाये जाते। इतना अधिक प्रयोग बहुत कम लोगों ने किया होगा।

आप क्रियात्मक के बड़े पक्षपाती थे - इसी कारण चिकित्सालय में कई मौलिक प्रयोग करके आप विद्यार्थियों को क्रियात्मक की उत्तम शिक्षा देना चाहते थे। इसके लिये भी आपने खूब प्रयत्न किया। Theoretically भी आप पढ़ाते थे (लगातार १५-२० वर्ष तो Physiology पढ़ाया करते थे), पर उतनी सफलता के साथ नहीं।

दिनों दिन चिकित्सालय में बढ़ने वाली बीमारों की भीड़ से उन दिनों की उन्नति का अनुमान लगाया जा सकता है। आपने "गुरुकुल -

"आर्य चिकित्सालय" नाम हटाकर "श्रद्धानन्द सेवाश्रम" नाम रख दिया — बल्कि एक तरह से "श्रद्धानन्द-सेवाश्रम" को जन्म दिया। आपकी स्कीम "श्रद्धानन्द सेवाश्रम (Shraddhanand Medical Mission Hospital)" को कुछ बड़ा बनाने की थी, उसमें से एक वार्ड (लागत 2000/) के लिये आपने अपनी ओर से भी रुपया देने का वायदा किया था ऐसा सुना जाता है।

इसके अतिरिक्त पुस्तकों से भी आपको बड़ा प्रेम था। आप वर्तमान पुस्तकालय के अलावा विद्यार्थियों के लिये एक अलग पुस्तकालय "Students Library" के नाम से खोलना चाहते थे। एक सभा बुला कर आपने उस की स्थापना भी की और सर्वप्रथम अपनी (150) के लगभग की पुस्तकें उसे दान में दीं। यह Library "आयुर्वेद परिषद्" के मन्त्री के प्रबन्ध में रही। बाद में ठीक एक वर्ष बाद हिन्दी कमेटी से इसे पुस्तकालय से ही सम्बद्ध कर दिया गया।

आपकी सहनशीलता इसी से परखी जा सकती है कि आपने मुख्याधिष्ठाता जी को एक बार कहा, "मेरे धन से कृपया एक Dissection-Hall (शवच्छेदनगृह) वर्तमान ढंग का बनवा दीजिए - पर शर्त यह है कि उस पर मेरे नाम का पत्थर न लगे।" 'नेकी कर कुएँ में डाल' का इससे ~~[illegible]~~ अच्छा उदाहरण मिलना कठिन है।

ब्रह्मचारियों के साथ आपका बड़ा प्रेम ~~[illegible]~~ रहता था - आप उन्हें बिल्कुल अपना बच्चा समझते थे। इसीलिये कई बार आपने लड़कों को कहा था, "तुम मेरे घर ~~[illegible]~~ आया करो, बच्चों की तरह खाओ-खेलो-कूदो;- तुम सब मेरे बच्चे ही तो हो।"

जो कोई रोगी डाक्टर महोदय से संजीवन पाकर उन्हें कुछ भी देता था तो वे झट उसे लेकर "श्रद्धानन्द-सेवाश्रम" के हिसाब में डाल लेते। इसके लिये उन्होंने एक अलग-खुली नोटबुक रखी हुई थी - जिसमें वे इस सब का हिसाब लिखते थे। वे कहा करते

थे कि इस रुपये को कार्यालय में मुख्याधिष्ठाता जी के पास जमा नहीं करना चाहिये, इससे फिर निकलवाने तथा व्यय करने में तो झगड़े करने पड़ते हैं तथा व्यय पर मुख्याधिष्ठाता जी के आनाकानी करने का भय रहता है — अतः यह राशि अपने पास ही हिसाब में रख लेनी चाहिये और यथासमय आवश्यकतानुसार "श्रद्धानन्द-सेवाश्रम" के कार्य के लिये इसे व्यय करना चाहिये।

सुनते हैं उन्हें तत्कालीन उपाध्यायों का वेतन अपर्याप्त प्रतीत होता है अ- इसलिये वे इसे बढ़ाना चाहते थे। इसके लिये इसी सिलसिले में सुनते हैं उन्होंने यह भी कहा था कि मैं इङ्गलैण्ड से उपाध्याय (Professors) बुलवाऊँगा। सम्भव है यह बात सत्य न हो • पर केवल आवेशमात्र में उन्होंने ऐसा कहा हो — पर इससे उनकी आगामी धुन का स्पष्ट पता चल जाता है।

आयुर्वेद महाविद्यालय को वे एक नया आकार पहनाना चाहते थे। उन्हें यह पसन्द नहीं

था कि आयुर्वेद महाविद्यालय एक Bogus College हो - वे इसे वर्तमान ढंग का प्रथम श्रेणी वाला अप-टू-डेट Medico-Ayurvedic College बनाना चाहते थे। इसके विषय में आपने अपनी विचारपूर्ण स्कीम (इस स्कीम के कुछ अंश को हम इसी अंक में 'परिशिष्ट' रूप में अलग से प्रकाशित कर रहे हैं — सं.) भी "विद्यार्थसभा" के सामने रखी जाने के लिये प्रस्तुत की थी। इसी अध्ययन के लिये वे एक बार बनारस में "हिन्दू यूनिवर्सिटी" का "आयुर्वेदिक-कालेज" देखने भी गये थे और वहाँ आपने इसी सिलसिले में 7 दिन बिताये थे। आपका इस विषय में एक विचार बड़ा उग्र था कि सर्वप्रथम गुरुकुल में 'वेद और आयुर्वेद' के विद्यार्थियों का अलग-अलग प्रबन्ध अलग का होना चाहिये — क्योंकि अन्यथा आयुर्वेद के विद्यार्थियों को कई आवश्यक कक्षाओं में वेद के कारण विकट उलझनें पड़ती हैं अर्थात् अपने आवश्यक प्रोग्राम को छोड़ना पड़ता है।

उनके इस सम्पूर्ण आयुर्वेदिक प्रयत्न का यह फल हुआ कि सारी पञ्चपुरी में उनका नाम बड़े ज़ोरों से फैल गया — और बड़े बड़े धनी लोग उनसे चिकित्सा करवाने लगे। इससे अपने आयुर्वेद महाविद्यालय का भी गौरव बढ़ा।

आयुर्वेद से उनको शुरू से ही बड़ा प्रेम था — और इसीलिये आपको सन् १९२६ में "पोद्दार प्रोग्राम युनिवर्सिटी — बम्बई" से प्राणाचार्य की उपाधि भी मिली थी। संस्कृत से आपको प्रेम तो था ही — अतः जब तब आप आयुर्वेद के ग्रन्थ पढ़ते रहा करते थे, और अपने इसी अध्ययन पर उन्होंने एक बार कहा भी था कि मैं "आयुर्वेद" भी अच्छी तरह से पढ़ा सकता हूँ। इसके अतिरिक्त यहाँ रहते हुए आप "चरक संहिता" का अंग्रेज़ी में अनुवाद भी कर रहे थे — उस अनुवाद के कुछ अंश अब भी सम्भवतः उनके भाई डा० गंगाधरराव रामचन्द्रराव लाम्बे कानपुर के पास अथवा पं. रामेश्वर जी आयुर्वेदालङ्कार के पास सुरक्षित रखे हुए हैं। आजकल साहब

"अनुशासन" को बहुत अच्छा समझते थे।

जीवन की सन्ध्या में धर्म कर्म कुशल ही हैं। वे भी बड़ी श्रद्धा एवं निष्ठा के साथ श्री आचार्य [illegible] देवशर्मा जी (अब, श्री अभयदेव जी संन्यासी) से उपनिषदें पढ़ा करते थे। उपनिषदों से ठाकुर साहब को बड़ी आत्मिक शान्ति मिलती थी।

अपने सम्मान्य अधिकारियों के प्रति ठाकुर साहब का बड़ा सम्मानपूर्ण व्यवहार था — वे उनका समुचित आदर करना जानते थे। आचार्य देवशर्मा जी (जो उनसे आयु में भी छोटे थे) के प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी — इसीलिये वनस्पतिवाटिका (Botanical Garden) में वे एक सड़क का नाम 'देवशर्मा रोड' तथा दूसरी का नाम 'सत्यव्रत रोड' रखने का विचार रखते थे।

इस प्रकार सम्मान्य ठाकुर महोदय गुरुकुल में लगभग ५½ मास कार्य करते रहे। ग्रीष्मावकाश उस वर्ष (१९३६ के साल) आठ-सितम्बर को हुआ था—

उन दिनों आप यहीं "अनुग्रह सेवाश्रम" में प्रशिक्षण सेवा करते थे। सहसा आपको प्राणान्त पित्ताशयशूल उठा। आप उसका Operation कराने बम्बई गये और रास्ते में ही ३० वर्ष की अवस्था में आपका बड़ोदा में स्वर्गवास होगया।

गुरुकुल में विद्यमान डा० साम्बे के इस छोटे से, पर अतिव्यग्र आत्मनिवेदन को देखें तो हमें पता चलेगा कि वे हमें उन्नति का एक रास्ता दिखाने आये थे, उन्होंने हमें रास्ता दिखा दिया और तब अपना काम पूरा हुआ समझ कर वे अपनी पैदा की हुई सब चीज़ों को दुधमुँहा अनाथ बच्चा छोड़ कर ही चलते बने।

स्पष्ट है हम कई अंशों तक उन्हें जज़्ब (Assimilate) नहीं कर पाये थे - या वे ही नहीं हो पाये हैं, जैसा कि एक बार श्री आचार्य देवशर्मा जी ने कहा था कि "दुःख है कि वे पूर्ण व्यवस्थावादी हैं, और कुलभावना को पूरे रूप में नहीं समझ सकते - इससे कुल के पूरे सदस्य नहीं बन पाये हैं।"

वर्तमान में विख्यात डाक्टर भारत के हैं भाई डाक्टर गङ्गाधरराव रामचन्द्रराव ताम्बे, कानपुर में डाक्टर हैं; तथा पुत्र श्री वामनराव गोपालराव ताम्बे [illegible] Bar-at-law, अकोला में बैरिस्टर हैं। ये दोनों ही England-Returned

डा० ताम्बे और हमारा कर्त्तव्य

डा० ताम्बे ने हमें दिया — और बहुत कुछ दिया। उन्होंने हमें एक उन्नति का क्रियात्मक प्रयोग दिया, और उन्नति का मार्ग दिखाया। इतना ही नहीं — स्वयं भी अँगुली पकड़ कर हमें इस गहनपथ पर चलाया। अब हमारा कर्तव्य यह रह जाता है कि हम उस पथ पर चलें। परन्तु क्या हमारी प्रवृत्ति उस ओर है? डाक्टर ताम्बे के प्रधान • जो प्रयोग यथासाध्य शीघ्र ही अपने जीवनकाल में ही पूरा कर लेना चाहते थे — क्या अब तक भी उसके विषय में हमने एक भी कदम आगे बढ़ाया है? नहीं, और बिल्कुल नहीं। तो फिर —

सबसे पहले हम आयुर्वेद महाविद्यालय

दूसरी समस्या है अध्यापकों की। वर्तमान में कुल २ ३ अध्यापक ही हैं। स्पष्ट ही है कि तीन अध्यापकों से एक इतना बड़ा आयुर्वेद महाविद्यालय नहीं चल सकता। एक अध्यापक को दिन भर पढ़ाने में लगाये रखकर यह आशा करना कि वह कुछ नया सोचेगा, नया पढ़ेगा, नया ज्ञान प्राप्त करेगा, तथा इन सब कुछ का लाभ विद्यार्थी को पहुँचायेगा — यह सोचना और कल्पना करना भी कितना हास्यास्पद है?

दुर्भाग्य से सारे महाविद्यालय विभाग के भार से ~~[illegible]~~ अधिक वजनदारी आयुर्वेद महाविद्यालय के हैं — जो उन्हें पढ़ाने वाले हैं कुल तीन अध्यापक। क्या यह संख्या पर्याप्त है? क्या इस प्रबन्ध से हमें उन्नति की आशा करनी चाहिये? यदि नहीं, तो क्यों नहीं हम इस प्रबन्ध को सुचारु एवं पर्याप्त बनाने का प्रयत्न करते?

तीसरी और सबसे आवश्यक समस्या है क्रियात्मक की। सभी जानते हैं कि चिकित्सक को कितना क्रियात्मक (Practical) का अभ्यास होना आवश्यक है— इसी पर उसकी भावी सफलता निर्भर करती है। कोरी पुस्तकें और कापियाँ परीक्षा के [redacted] बाद २ घन्टों के साथ ही समाप्त हो जाती हैं — यदि कुछ काम आता है तो वह हैं अँगुलियों पर गिने हुए Points, हाथ की सफाई और चलता हुआ क्रियात्मक का अभ्यासी हाथ।

बड़े दुःख का विषय है कि हमारे यहाँ इस क्रियात्मक की सबसे अधिक उपेक्षा तथा कमी है, इसका परिणाम भी वही निकलता है जो होना चाहिये— हमारे यहाँ स्नातकों को ज़रा सा Dressing तक भी करना नहीं आता, हाथ ही नहीं चलता, अगर किसी को Diagnose करना पड़े तो पसीना आ जाये, सामान्य सी चीरफाड़ी या चीरे में ही हाथ काँपने लगें, बाहर से Subcutaneous Injection में भी हाथ हिलने लगें—

और इसीलिये छात्रों को तो यहाँ तक कहते सुना गया है कि गुरुकुल के आयुर्वेदाचार्यों की योग्यता एक साधारण Compounder के बराबर भी नहीं होती। क्या यह सब कुछ हमारी उज्ज्वल शाखा में बहुत बड़ा काला धब्बा नहीं है? क्या यह हमारे लिए इसके धोने के उपाय सोचने वाली बात नहीं?

इसमें हमारी समझ में दोनों का ही दोष है – अधिकारियों का तथा ब्रह्मचारियों का। धनाभाव से या अन्य कई कारणों से अधिकारियों की ओर से तो क्रियात्मक की आवश्यक उपेक्षा है ही – और यहाँ तक है कि ५० विद्यार्थियों के पीछे कुल २ ही सस्ते इधर के तथा घटिया दर्जे के Microscopes हैं जिनमें से दो तो प्रायः खराब ही रहते हैं; १ अलबत्ता कभी-कभी ठीक रहता है, आदि-आदि। पर इधर सबसे बड़ा दोष तो है इन विद्यार्थियों का ही! ये अपनी आरामतलबी के सबब से किसी काम में हाथ डालना ही नहीं पसन्द करते। हमें जितना भी कुछ थोड़ा-बहुत मौका मिले – उसी

का पूर्ण ज्ञान कराना चाहिये तथा क्रियात्मक का पूर्ण अभ्यास कराना चाहिये — तभी हम भावी जीवन में सफलता पा सकते हैं।

हमारी समझ में क्रियात्मक की उपयोगिता को बढ़ाने के लिये यह नियम बनाना चाहिये कि परीक्षा में क्रियात्मक में अलग 50% अङ्क लेकर पास होना पड़ेगा। इसके अलावा अन्य भी विविध उपायों से यथासम्भव क्रियात्मक के उपयुक्त साधन जुटाने चाहियें।

क्रियात्मक की कमी का एक कारण यह भी है कि पर्याप्त संख्या में नये रोगी चिकित्सालय में नहीं आते हैं — जिससे विद्यार्थियों को प्रतिदिन नये केस Handle करने तथा अध्ययन करने का अवसर नहीं मिलता। इसके लिये हमारी समझ में — यदि सम्भव हो तो — आयुर्वेद महाविद्यालय वहाँ बनाना चाहिये जहाँ कि अच्छी बस्ती हो और रोगी बहुतायत से आ सकें। अतः जयपुर में आयुर्वेद महाविद्यालय बनाना उचित है —

जैसा कि कहानी का विषय भी है।

चौथी विशेषता पुस्तकालय की।

डा० ताम्बे पुस्तकों को भी अवश्य महत्त्व देते थे। लो-
कालय में ही इतने पुस्तकों से ही सीखना भी बहुत कुछ
है। एक पुस्तक ही ऐसा साधन है- जिससे कि हम
जब चाहें तब कालिदास- शेक्सपीयर - मिल्टन - वर्ड्सवर्थ-
ग्रे- टेनिसन- डौरिंगटन - शैली - कीट्स - इलियट-लॉंगफेलो-
कोलरिज- ब्राउनिंग आदि से बातचीत कर सकते हैं। इसी-
लिये डा० ताम्बे ने 'आयुर्वेद-महाविद्यालय' की 'आयुर्वेद -
परिषद्' के अन्तर्गत "Students' Library" की
स्थापना की थी - जिसमें अलमारी १०० - १२०) की
विविध विषयों की पुस्तकें सर्वप्रथम दान में दी थीं। इसके
पुस्तकालय में भी आयुर्वेद (प्राचीन और अर्वाचीन अर्थात्
पौरस्त्य और पाश्चात्य) के लिये अलग विभाग है — पर
उसमें ज्ञान की पुस्तकें बहुत अपर्याप्त हैं। उसमें वैद्यसम्मेलनों
की वार्षिक रिपोर्टें, अष्टाङ्गहृदयों तथा अन्य ऐसी-ऐसी
किताबें होने का भी कुछ तैयार है, पर ज्ञान की और नई-नई

पुस्तकों की कमी; कमसेकम हिन्दी में समय-समय पर निकलने वाली नई पुस्तकों का तो बिलकुल अभाव ही है।

इसके अतिरिक्त पाठ्यपुस्तक विभाग में भी काफी गड़बड़ है। पाठविधि में किसी किताब का १९वाँ संस्करण लिखा है और विद्यार्थियों को पुस्तकें मिल रही हैं १६वें-२५वें संस्करण की, जबकि उसी पुस्तक का २५वाँ-२६वाँ संस्करण प्रकाशित हो चुका है। इसीप्रकार १९२८ के पाठ में किसीपुस्तक का सन् १९०० का संस्करण विद्यार्थी को दिया जा रहा है - जब कि प्रायः प्रतिवर्ष हर पुस्तक नयी और नये रूप में छपती है। अब बतलाइये विद्यार्थी इन पुराने-पुराने पन्नों को चाटेगा क्या? ये तो हमारा महाविद्यालय-पुस्तकालय क्या हुआ, किसी Archaeological Museum का अजायबघर हुआ।

इसके साथ ही स्वास्थ्यविषयक पत्रिकाओं (English तथा हिन्दी दोनों में) का भी अभाव है।

हमें आशा है कि इस ओर की बड़ी भारी कमी को हमारे सम्मान्य अधिकारी महानुभाव शीघ्र

ही दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

इस के साथ ही हमारा विद्यार्थियों से प्रति भी कहते हैं कि थोड़े काफी जोर कर पास हो जाने का जमाना बद गया, अब तो खुद पढ़ कर कुछ हासिल कर कमाया जायेगा तभी लाभ होगा — अन्यथा डिग्री अभी बहुत दूर है।

उपरोक्त सभी बातों की ओर हम अपने सम्मान्य अधिकारिगण/गुरुजनों तथा सभी ब्रह्मचारियों का ध्यान आकृष्ट करते हैं तथा निवेदन करते हैं कि सब उपर्यु गम्भीरता से विचार करके अपना-अपना यथोचित कर्त्तव्य पूरा करें — तभी हम दिवंगत आचार्य साहब की आत्मा के प्रति पूर्ण आदर प्रदर्शित कर सकेंगे — अन्यथा जहाँ हमारी हानि होगी वहाँ दिवंगत आचार्य साहब की आत्मा को भी पूर्ण शान्ति नहीं मिलेगी।

परमपिता परमात्मा से अपना कर्त्तव्य पालन की शक्ति प्रदान करे तथा उस पवित्र आत्मा को शान्ति।

राह और राही

हम भटक गये थे। भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाने वाले मार्गों में हमें अपना मार्ग दिखाई नहीं देता था। डाक्टर ताम्बे आये, उन्होंने हमें हमारा रास्ता दिखाया और फिर चले गये। हमारा कर्त्तव्य है कि हम उस रास्ते पर चलें और खूब सावधानीपूर्वक चलें — अन्यथा जैसे हम पहले भटके रहे थे, वैसे ही रह जायेंगे — डाक्टर ताम्बे के आकर हमें रास्ता दिखाने का कोई फल नहीं होगा।

डा० ताम्बे का पत्रव्यवहार

इस अङ्क में हम डाक्टर ताम्बे का अपने मित्रों तथा स्नेहियों के साथ पत्रव्यवहार प्रकाशित कर रहे हैं। साथ ही हम वे तीन अप्रकाशित पत्र भी दे रहे हैं जो सम्मानित डाक्टर महोदय ने गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता को यहाँ आने से पूर्व लिखे थे। इसके अतिरिक्त दो और वस्तुएं हम प्रकाशित कर रहे हैं — 'आयुर्वेद महाविद्यालय की १९२६ की रिपोर्ट तथा नयी स्कीम' — जो सम्मानित डाक्टर महोदय ने

"विज्ञानविभा" में विज्ञापन प्रकाशित करने की कोशिश की थी। इस अंक का यह अध्याय (अर्थात् परिशिष्ट) वास्तव में अध्ययन करने योग्य चीज़ है, और यह कहना अयथार्थ नहीं कि हमारे इस अंक को प्रकाशित करने के उद्देश्यों में से एक तथा प्रमुख उद्देश्य यह भी था कि डाक्टर साहब के पत्रव्यवहार को प्रकाशित करके उनकी मानवसेवा के प्रति प्रेम तथा लगन को स्पष्ट किया जाय। अतः हम सबसे निवेदन करेंगे कि वे इस चीज़ को अवश्य आद्योपान्त पढ़ जायें, और वास्तव में ऐसे ही पढ़ कर वे समझेंगे कि डा० साहब क्या थे!

एक बात और -, डा० साहब का पत्रव्यवहार अंग्रेज़ी में था। हमने स्वयं उसे भाषान्तरित किया है - अतः उसमें अवश्य कुछ अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक ही है। आशा है प्रेमीपाठक उसके लिये क्षमा करेंगे।

<u>धन्यवाद</u>

इस अङ्क में वे सभी कृतिकार - लेखक - चित्रकार - शिल्पकार तथा अन्य सहायक महानुभाव हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने हमें अपने यथाशक्य सहयोग से अनुगृहीत किया है। इसके अतिरिक्त उन महानुभावों के भी हम अतिशय अनुगृहीत हैं - जिन्होंने हमें इस मुद्रण - संग्रह तथा विज्ञापन प्रेषण की पूरी सहायता दी है। इन सब महानुभावों के अमूल्य सहयोग के बिना इस अङ्क को इस प्रकार प्रकाशित रूप से तथा शीघ्रता से निकाल सकना हमारे लिये असम्भव था।

— सम्पादकमण्डल

परिशिष्ट (२६३-३६१)

१

गुरुकुल कांगड़ी,
५ जुलाई १९२८

मेरे प्रिय सेठ [illegible]— नमस्ते.

मुझे ख्याल नहीं, आपके रांची लौटने के बाद आपका कोई पत्र मुझे मिला हो। शायद नहीं ही मिला— जैसा कि मुझे याद आता है। मुझे आशा है- अब आप अपने ठिकाने पर कुशलपूर्वक होंगे। अपने कृपापत्र में आपने शिलाजीत (जो कि आपको दिया गया था) का बिल भेजने के लिये लिखा है। मैंने इसके विषय में श्री [illegible]जी से पूछा था - परन्तु उन्होंने बताया कि वह (शिलाजीत) आपको उपहार के रूप में दिया गया था। अतः [illegible] शिलाजीत

का दाम ९२ आने प्रति तोला लिया जाता है। यह मैं आप को केवल सूचनार्थ लिख रहा हूँ कि यदि कोई महानुभाव शिलाजीत मँगाना चाहें तो आप उन्हें दाम बतलादें। हम आपके कृतज्ञ होंगे-यदि आप कृपाकर (रु० ५००) का दान मंजूर करके अनुग्रह करेंगे-जैसा कि आपने गुरुकुल चिकित्सालय को देने का वचन भी दिया था। इसे धन की बड़ी जरूरत है। आपकी चिकित्सालय (जिसकी स्थापना पर आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना निर्भर करती है) के लिये दी हुई थोड़ी भी सहायता बड़े धन्यवादपूर्वक स्वीकार की जावेगी।

यहाँ प्रायः प्रतिदिन अच्छी वर्षा होरही है। मैं यहाँ आनन्द प्रसन्न हूँ और आशा करता हूँ कि आप सब भी वहाँ सुखी होंगे। बच्चों को प्यार और चि० जीवनदासभाई, मधुदास तथा अन्यों को आशीष। श्रीमती राधाबाई जी के प्रति सम्मान।

आपका स्नेही

गोपालराव रामचन्द्र राव शास्त्री.

२

गुरुकुल कांगड़ी, यू.पी.,

६ जून १९ ३७.

प्रिय जीवनदास भाई जी - नमस्ते.

कुछ सप्ताह बीते - एक दिन प्रातःकाल, मेरे मित्र सेठ लाधाभाई, आपकी माता जी, आपके भाई मथुरादास भाई और शकुर (?), श्रीमती मथुरादास - सब के सब अचानक गुरुकुल - चिकित्सालय में आ पहुँचे। और मुझे उन्होंने आनन्दमय एवं आश्चर्यान्वित कर दिया। इस बात से मुझे अत्यधिक प्रसन्नता इसलिये भी हुई, क्योंकि गत मार्च मास के अन्त में कराची से चलते हुए मैं उनसे विदा लेने का सौभाग्य

नहीं प्राप्त कर सका था ।

हम सब इकट्ठे अपनी छोटी सी कुटिया में गये और हमने आनन्ददायक गपशप व मनोरञ्जन किया ।

कुछ दिन बाद, सेठ लाधाभाई और मथुरादास फिर गुरुकुल आये । मैंने उन्हें घुमाया और सारी संस्था अच्छी तरह से दिखाई । मैंने हरद्वार में सारे दल (पार्टी) को उनके उतारे पर भी देखा और उनके सत्कार तथा आतिथ्य के आनन्द का उपभोग किया । इसके ठीक बाद ही, मुझे एक सप्ताह के लिये कार्यार्थ बनारस और कानपुर जाना पड़ा । मैं उसी (मई) मास के अन्त में २६ तारीख को लौटा, और मुझे यह देखकर पश्चात्ताप हुआ कि दल पहले ही रवाना हो चुका था ।

२— सेठ लाधाभाई तथा बाकी सब ने मुझे बताया कि वे आयुर्वेद महाविद्यालय — जिसका, कि मुझे अध्यक्ष होने का सौभाग्य प्राप्त है — समेत गुरुकुल-संस्था

को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे।

हमारे यहाँ आयुर्वेदिक महाविद्यालय से सम्बद्ध १६ रोगिशय्याओं (Beds) का प्रबन्ध है। यह उपर्युक्त महाविद्यालय और जनता की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये अपर्याप्त है। हम रोगीशय्याओं की संख्या कम से कम १०० तक बढ़ाना चाहते हैं - यदि हमें धन की सहायता प्राप्त हो। सेठ लाधाभाई ने हमारी कठिनता को समझा है। दो मास व्यतीत हुए, जब से मैं यहाँ आया हूँ - शल्यक्रिया (Surgery) का कार्य शीघ्रता से बढ़ रहा है और मैं बड़े और छोटे (Major and Minor) सब तरह के ऑपरेशन कर रहा हूँ। स्वभावतः, काम (या व्यय) लगातार बढ़ रहा है। क्योंकि चिकित्सालय का प्रयोजन प्रारम्भ से ही आयुर्वेदिक महाविद्यालय के विद्यार्थियों का क्रियात्मक शिक्षण रहा है - अतः जितने ही अधिक रोगी आवेंगे, उतना ही विद्यार्थियों का लाभ होगा। मैं आयुर्वेदिक महाविद्यालय और चिकित्सालय

के पुनसङ्गठन में व्यग्र हूं, परन्तु धन के अभाव में मुझे नितान्त निराशा अनुभव होती है। मैं अपनी जेब से रोगियों के लिये रोगीशय्या- बिछौने- कपड़े- बर्तन- भोजन आदि के लिये प्रतिमास ५००) देता हूं जो कि पहले मेरा २ मास का व्यय था। गुरुकुल के अधिकारी धन-संग्रह के लिये जी-जान से कोशिश कर रहे हैं - परन्तु आप जानते ही हैं धन हमेशा धीमे धीमे आता है। सेठ राधाभाई ने स्वयं १००) देने का वचन दिया है जो कि चिकित्सालय के साधन-सम्पन्न करने (उद्धार करने) में उनकी वैयक्तिक गुणग्राहकता का परिचायक है। उन्होंने एक सूची बना कर तथा उसे अपने काम-काज के साथियों में प्रचारित करके भी हमारे प्रयत्न की सहायता करने का वचन दिया है।

३ - सेठ छोटालालभाईशाह के भतीजे और मेरे मित्र मि० रतिलालभाई तथा उनके मित्र सेठ मणिलालभाई ने भी यहाँ आकर तथा मुझसे

मिल कर और गुरुकुल-चिकित्सालय का अवलोकन
कर मुझे आनन्दित किया और पीड़ित मानवजाति
के लिये हमारे तुच्छ कार्य की प्रशंसा की। मैं
उन्हें (मि० रतिलालभाई को) तथा सेठ छोटालालभाई-
शाह को अपनी बड़ी लड़की रमा, — जिनका स्वर्गवास
गतवर्ष बाढ़दुर्घटना के कारण होगया था —, की
स्मृति में एक अच्छी राशि दान करने के लिये लिख
रहा हूँ। अपने किसी प्रिय (या प्रिया) की स्मृति
को मनाने (या कायम रखने) के लिये किसी
चिकित्सालय में उसके नाम से वार्ड बनवाने से
बढ़ कर कोई अच्छा तरीका नहीं है। १२ रोगियों
के लिये १ वार्ड बनवाने में केवल ६०००) लगते
हैं। मैं कृतज्ञता अनुभव करूँगा यदि आप,
सेठ लाधाभाई और श्रीमती जीवनदास से छोटालालभाई
और उनकी मान्य धर्मपत्नी जी को यह बात
कहकर मेरे प्रस्ताव की सहायता करेंगे।

४.— आप अनेक बार यूरोप गये हैं और सारे

भारत - बर्मा - लङ्का और जापान घूमे हैं। मैं समझता हूँ आपने इन स्थानों के सार्वजनिक चिकित्सालयों को देखा होगा। आप सोच सकते हैं (जानते ही होंगे) कि एक आधुनिक चिकित्सालय कितना मँहगा पड़ता है, और विशेषतः तब, जब कि इसके साथ एक मैडिकल कॉलेज भी सम्बद्ध हो।

हमारी आवश्यकताएँ निम्नलिखित हैं—

१ महाविद्यालय भवन (College - Buildng)

२ विद्यार्थी - आश्रम (Hostel)

३ दो सुसाधनसम्पन्न क्रियाशालाये (Laboratories)

४ एक सुसाधनसम्पन्न शवच्छेदनगृह (Dissection-Hall)

५ एक पैथोलौजिकल म्यूजियम (Pathological Museum)

६ बाह्य रोगियों (Out door Pateents) के लिये

७ एक उत्तम इमारत तथा औषधालय (Dispensary)

X'Rays Apparatus, Diathermy Machine और सम्भव हो तो Radium धातु की अच्छी-खासी मात्रा आदि आधुनिक साधनों से सुसम्पन्न हो।

यद्यपि इन रोगों की चिकित्सा अधिकतः आयुर्वेदीय विधि से करते हैं - तो भी शल्यतन्त्र (Surgery) तथा उसकी शाखाओं, प्रसूतितन्त्र (Midwifery) आदि को भी पूर्णतया आधुनिक अप-टू-डेट विधियों से व्यवहार में लाते हैं। इस सब के लिये धन की अत्यधिक आवश्यकता है। हमने हिसाब लगाया है कि इस सारी योजना (Scheme) को पूरा करने के लिये कम से कम ३-४ लाख रुपये की आवश्यकता होगी। हम इस सारी राशि को किसी एक ही आदमी से पाने की आशा नहीं रखते - यद्यपि यह कुछ असम्भव नहीं है। परन्तु हम "दस की लकड़ी, एक का बोझा" इस आदर्श का भरोसा रखते हैं। भारत के सब भागों में स्थित उदार दानियों से इस राशि को इकट्ठा करना कठिन नहीं होना चाहिये - क्योंकि गुरुकुल भारत के सब भागों से बिना किसी जात-पाँत या धर्म के भेदभाव के, बच्चों को प्रविष्ट करता है।

हमें बालरोगियों के लिये औषधालय (Dispensary) और एक वार्ड की तो अत्यधिक आवश्यकता है। इन दोनों की लागत मिला कर कुल १२-१३ हज़ार रुपया होगी। जो व्यक्ति इस राशि को - इस की न्यूनाधिकता के प्रति निरपेक्ष रह कर - दान करेगा, वह विद्यार्थियों को पर्याप्त शिक्षा प्रदान करने में; पीड़ित मानवजाति की सहायता करने में; और अन्त में - जगत् के चिकित्साविज्ञान के संरक्षक (Paterfamilias), आयुर्वेदीय-चिकित्सापद्धति (Ayurvedic Medical Science) के पुनरुज्जीवन एवम् पुनरुद्धार के उत्तम कार्य में हमारा हाथ बँटायेगा।

प्रिय जीवनदासभाई, आपका और आपके योग्य (गुणी) पिता का करांची के व्यावसायिक क्षेत्र में बहुत अधिक प्रभाव है। व्यवसायी-समाज में आप दोनों बड़े आदर से ग्रहण किये जाते हैं और आप दोनों का अत्युच्च सम्मान किया जाता है। यदि आप सब इस

परोपकार के उच्च कार्य में रुचि लें, तो मुझे विश्वास है कि आप को इस ठोस एवं वास्तविक राशि को एकत्रित करने में कठिनाई नहीं होगी।

सैंकड़ों दरिद्री - गरीब और निराश्रय आदमी अपने जीवन के अन्तिम दिनों को भगवती भागीरथी के पुनीत तट पर बिताने के लिये तथा निराधार होकर, संसार के साथ से विमुक्त होकर निरंतर पड़े रहने के लिये हरद्वार आते हैं। इस अवस्था में एक उत्तम, धर्मार्थ औषधालय बहुतों के लिये एक उत्तम वरदान (Blessing - नियामत -) होगा। रु० १०००) या इससे अधिक देने वाले दानी के नाम का पत्थर, दानी के प्रति सम्मान एवं कृतज्ञता प्रकट करने के लिये तथा दूसरों में इस कदम पर चलने का लालच पैदा करने के लिये, इमारतों के कमरों पर लगा देंगे। यदि कोई उदार दानी अकेला ही इस योजना के किसी शाखाभूत अंग (Branch - item of the Scheme) के सारे ब्लौक (Block) को बनाने के

लिये दान देगा तो हम उस ब्लॉक का नाम उस दानी के नाम के अनुसार रख देंगे। मैं इस काम को करने में बहुत व्यग्र हूँ (मेरी इस काम को समाप्त कर लेने की उग्र अभिलाषा है), और यह स्पष्ट ही है कि मैं इस काम को जनता की उदार सहायता के बिना नहीं कर सकता।

मैं व्यक्तिरूपसे तथा गुरुकुल की ओर से आपका बड़ा आभार मानूँगा - यदि आप इस प्रकार के परोपकार के काम में हमारी सहायता करेंगे - जैसा कि आप [redacted] करने में समर्थ हैं।

मुझे आशा है, सेठ लालभाई अपने सारे दल के साथ कुशलपूर्वक अपनी तीर्थयात्रा से घर लौट चुके होंगे। कृपया सब छोटों को मेरा प्यार कहिए और आप सबको आशीर्वाद।

हृदय के अन्तरतम सम्मान के साथ

निष्कपटता से आपका हार्दिक धन्यवाद करता हुआ —

डा० जी० आर० नाम्बे.

गुरुकुल कांगड़ी,

२१ जून १९३७.

सम्पादक,

"The Leader"

प्रिय महोदय - नमस्ते

क्या मैं आयुर्वेद के प्रेमियों और प्रशंसकों - संसार के चिकित्साशास्त्र के सरपञ्चों (Paterfamilias) — असंख्य पीड़ित मानवों के प्रति सहानुभूति रखने वाले सहृदयों - आयुर्वैदिक महाविद्यालयों

को उन्नत करने वाले और अपने आयुर्वेद के पुनरुद्धारक उदार और सहृदय आर्यसामाजिक धर्माधिकारियों और ईश्वरनिष्ठ श्रद्धालुओं के सामने, गुरुकुल कांगड़ी के आयुर्वेद महाविद्यालय और चिकित्सालय की धन से उन्नति के लिये अपील के माध्यम के रूप में आपके सम्मानित स्तम्भों में स्थान पा सकता हूँ ?

गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय से प्रतिवर्ष लगभग आधा दर्जन चिकित्सक स्नातक 'आयुर्वेदालंकार' आदि इसी तरह की उपाधियाँ लेकर निकलते हैं। ये उपाधियाँ प्रत्येक सामान्य (और विशेष) दुःख-दर्द तथा रोग की सफल चिकित्सा के कारण व्यावसायिक (Professional) एवं व्यावहारिक ज्ञान को सूचित करती हैं। इस ज्ञान का हुनर एकमात्र क्रियाशालाओं और चिकित्सालयों के वार्डों में प्राप्त क्रियात्मक रोगिपरीक्षा की शिक्षा और अनुभव पर ही निर्भर

करता है। पर स्पष्ट है कि एक मैडिकल कॉलेज को, जो कि अपने पर, गुणी चिकित्सक स्नातकों को तैयार करने का महान् उत्तरदायित्व लेता है, उसे अधिकतम साधन सम्पन्न क्रियाशालाओं और चिकित्सालयों से युक्त होना चाहिये। इन चिकित्सालयों में प्रत्येक प्रकार के कम से कम ५० अन्दर के बीमारों (Indoor Patients) की चिकित्सा का पूर्ण प्रबन्ध हो। उनमें नर्सिंग (Nursing)-मुफ्त भोजन-और बच्चों के लिये अधिकतम सम्पन्न और सन्तोषजनक प्रबन्ध होना चाहिये।

इस सबके लिये एक भरे-पूरे और उचित कर्मचारिवर्ग (Staff) की आवश्यकता होती है—चाहे वह वैतनिक हो या अवैतनिक। आज, जीवन-स्थिति के लिये कठोर संग्राम के दिनों में, अवैतनिक कार्य के लिये यथोचित रीति से शिक्षित और अनुभवी व्यक्तियों को पाना यदि असम्भव नहीं- तो अति कठिन अवश्य है। गुरुकुल में धन की बड़ी कमी है।

गुरुकुल दो और — वेद और साधारण (गुरुकुल) — महाविद्यालयों के रूप में अत्यधिक प्रशंसनीय कार्य कर रहा है, पर उन महाविद्यालयों में भी पूरक कर्मचारिवर्ग (Supplement Staff) की आवश्यकता होती है। आयुर्वेद महाविद्यालयों में बहुत कम उपाध्यायों का स्टाफ है - जिसका अनिवार्य परिणाम यह है कि एक आदमी को २ या इससे अधिक विषय पढ़ाने पड़ते हैं - और उसे अत्यन्त परिश्रम करना पड़ता है। यदि बीमारी के कारण अथवा और किसी कारण से वह अपने कार्य (Duty) पर उपस्थित होने में असमर्थ होता है तो उस विषय की उपेक्षा हो जाती है- जो वह पढ़ाता है, और तब अध्यापन में कठिनता होती है। उस उपाध्यायवर्ग को जिसे चिकित्सालय के कार्य में नियुक्त किया जाता है, अन्य सदस्यों की अनुपस्थिति में चिकित्सालय में कार्य करना पड़ता है - तो उसके अध्यापन के साथ-साथ चिकित्सालय की भी उपेक्षा हो जाती है। पहले

से लिये हुए रोगियों पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता और फलत नये प्रवेश की संख्या अत्यधिक घट जाती है। नये प्रवेश के गिरने के कारण विद्यार्थियों को रोगिपरीक्षा की पर्याप्त शिक्षा नहीं मिल सकती। वास्तव में अध्यापन अर्थात् College और चिकित्सालय के कार्य में यह एक खराब चक्कर चल पड़ता है और फलत दोनों संस्थाओं का ह्रास हो जाता है। इसका उपाय-और एकमात्र उपाय-यह है कि प्रारम्भिक व्यय-चन्दे-दान-एवम् दयालुता सहानुभूति और धन के उपहारों के लिये फण्ड बना कर गुरुकुल की सहायता की जाय।

एक क्षण के लिये भी यह कल्पना न कीजिए कि गुरुकुल आयुर्वैदिक महाविद्यालय और चिकित्सालय अतिव्ययी और अनावश्यक संस्थायें हैं। इन दोनों की भरपूर आवश्यकता कॉलेज के परिणाम-चिकित्सालय में बढ़ती हुई उपस्थिति-और मेजर सर्जिकल ऑपरेशनों

(Major Surgical Operations) से ही सिद्ध है।

इसके अतिरिक्त हरद्वार की तेजी से बढ़ रही है। इसके दो अंग ज्वालापुर और कनखल जो २ वर्ष पूर्व एक दूसरे से मीलों दूर थे - अब वास्तव में एक दूसरे के साथ बृहत्-हरद्वार के रूप में मिल गये हैं। स्थायी आबादी (बस्ती) भी बढ़ रही है और इसके साथही भारत की सभी दिशाओं से कुम्भ* के लिये आने वाले तीर्थयात्रियों की संख्या भी बढ़ रही है। उनकी एक बड़ी [redacted] तादाद कङ्गाल है। वे धर्मशालाओं में रहते हैं और खैरात अर्थात् भिक्षा पर निर्भर करते हैं। जब वे पूर्ण स्वस्थ रहते हैं तो जनता के लिये दुखदायी होते हैं-और जब बीमार पड़ जाते हैं, तब उनकी अवस्था अत्यन्त करुणाजनक होती है। सामान्यतः, स्थायी निवासियों और विशेषतः

---

* १९३[redacted]८ के साल में महान् कुम्भ का मेला अप्रैल के मास में हरद्वार में हुआ था। उसके लिये सम्मानित डाक्टर महोदय बड़ी सरगर्मी से तैयारी कर रहे थे। उसी सिलसिले में उन्होंने [redacted] सम्पादक महोदय को यह पत्र जून १९३७ में ही कुम्भ का ख्याल रखते हुए लिखा था। — सम्पादक

तीर्थयात्रियों की इस प्रकार तेज़ी से बढ़ती बस्ती के लिये हरद्वार में या उसके पास की किसी बस्ती के समीप स्थित बड़े सार्वजनिक चिकित्सालयों की एकदम महती आवश्यकता है। गुरुकुल के पास विस्तृत भूमि है, जहाँ उसकी स्थिति और स्वास्थ्यरक्षा के लिहाज़ से सफलतापूर्वक कम से कम १५० रोगी-शय्याओं वाला चिकित्सालय बनाया जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं, कि ('हरद्वार-यूनियन' की) म्युनिसिपैलिटी एक उत्तम सार्वजनिक चिकित्सालय चला रही है, जो बड़े योग्य हाथों में है। वर्तमान इन्चार्ज मैडिकल ऑफीसर डाक्टर दुबे ऐम० बी० बी० ऐस्० योग्य - परिश्रमी-सशक्त और हमदर्द अफ़सर तथा अधिकारी से सर्वप्रिय हैं। परन्तु निवासस्थान (रोगि-शय्याओं) और सहायता (Assistance) के पर्याप्त अभाव के कारण वे सफल नहीं हैं। हरद्वार में बहुत से आयुर्वैदिक औषधालय भी

हैं, परन्तु वे प्रायः धर्मार्थ औषधालयों के रूप में कैमिस्टों और दवाफ़रोशों (Chemists and Druggists) की दुकानें हैं।

अन्त में, जो कहना था — वह कर दिया है, मैं बड़ी विनम्रता और उत्साह एवं अनुराग से श्रीमानों और उदारों के सामने सहृदयता और धन के द्वारा गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय और चिकित्सालय की सहायता के लिये और इस प्रकार अपनी उपयोगिता और आर्यसमाज — वह समाज, जो मेरी विनम्र सम्मति में, वर्तमान में शानदार हिन्दु-धर्म का सबसे अधिक शक्तिमान् रक्षक और क़िला (Stronghold) है — की प्रिय संस्था (Pet-child) गुरुकुल के प्रिय और अच्छे नाम के चक्र को विस्तृत करने के लिये प्रार्थना करता हूँ।

इस पत्र को समाप्त करने से पूर्व गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता जी की अध्यक्षता में, उनसे तथा उनके साथियों से, जिनकी दिलचस्पी गुरुकुल के सभी विभागों में बढ़ी हुई है, प्राप्त सहायता एवं सच्चे सहयोग को बड़े धन्यवाद-पूर्वक स्वीकार करता हूँ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी अपील उसी सचाई और अनुभव के साथ, जिसमें कि यह की जा रही है, अवश्य ही उकसाने वाली एवं बलवान् प्रेरणा (या उत्तेजना) पैदा करेगी।

डा० जी० आर० लाम्बे
M A, B Sc, L M S, K. I H
अध्यक्ष, गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय
गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी.

४

गुरुकुल कांगड़ी

५ जुलाई, १९३७

श्री सम्पादक जी,

प्रिय महोदय,

मैं समयानुसार, अप्रैल १९३८ में हरद्वार में जुड़ने वाले पूर्ण कुम्भ* मेले के लिये सन्तोषजनक

---

* इस पत्र से भी उसी पूर्ण कुम्भ मेले को ध्यान में रख कर सम्पादक आयुर्वेद महोदय ने यह एक हृदयग्राही अपील [illegible] समाचारपत्रों में प्रकाशनार्थ भेजी।

प्रबन्ध तथा योग्य मैडिकल (चिकित्सासम्बन्धी) सहायता जुटाने के लिये बड़ी गम्भीरता तथा तत्परता से विचार कर रहा हूँ।

यद्यपि यह प्रत्यक्ष है कि प्रबन्ध करने के लिये अभी हमारे सामने ६-१० महीने पड़े हुए हैं - तथापि यह भी किसी से छिपा नहीं है कि सभी ज्ञात इंजिनों (Locomotives) की अपेक्षा समय कहीं अधिक तेज़ गति से भागता है। अतः आवश्यक तैयारियाँ करने के लिये १० महीने का समय बहुत थोड़ा ही है।

मैं यथासम्भव यह प्रस्ताव करता हूँ कि प्रत्येक प्रान्त और उनमें बोली जाने वाली भाषाओं के आधार पर मैडिकल-सहायता का संयोजन (आयोजन-संगठन) किया जावे और प्रत्येक प्रान्त की भाषा और रीति-रिवाज़ तथा आदतों को जानने वाला स्टाफ़ रखा जावे, ताकि एक दूसरे को समझने में रोगी-चिकित्सक

और उसके स्वरूप को विकृत न हो। इस आयोजन को सरल एवं सुचारु बनाने के लिये मैं भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के निवासियों को नये समाचार-पत्रों के माध्यम द्वारा एक अपील भेजना चाहता हूँ। मै आपका हृदय से आभार मानूँगा- यदि आप आगामी वर्ष के उस महान पवित्र अवसर (कुम्भ) पर जनता की सेवा के लिये, अपने प्रान्त मे प्रकाशित होने वाले सभी मासिक- त्रैमासिक- दैनिक आदि समाचार-पत्रों की सूची भेजकर मेरे इस विनम्र प्रयत्न मे हाथ बँटायेंगे।

आपका कृतज्ञ

डा० गोपाल रामचन्द्र ताम्बे

अध्यक्ष, गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय

मेरा पता— डा० गोपाल आर० ताम्बे,
M.A., B.Sc, L.M. and S., K.I.H.(Second Class).
Principal, Gurukul Medico-Ayurvedic College.

५

गुरुकुल कांगड़ी

२० जुलाई, १९३७.

प्रिय डाक्टर,*

पिछले दिनों आपके हस्पताल में जब हम दोनों मिले थे - उसके बाद से गुरुकुल के पास-पड़ोस में धात्री-गृह (मातृ-गृह - Maternity House) स्थापित करने वाली अपनी योजना में मैं उन्नति नहीं कर सका हूँ। डा० राधाकृष्ण जी के बाहर छुट्टी पर होने के कारण मैं इस

---

* यह पत्र किसी लेडी-डाक्टर (Lady-doctor) को लिखा गया प्रतीत होता है - जैसा कि इस पत्र के अन्तिम भाग को देखने से पता लगता है। परन्तु निश्चयात्मक रूप से कह नहीं सकते कि वह कौनसी Lady-doctor हैं।

विषय में विचार भी नहीं कर सका हूँ। तो भी, अन्दर और बाहर
के (Indoor and Outdoor) स्त्रीरोगियों की चिकित्सा करने में
आप मेरी सहायता करना स्वीकार करें- तो मैं एक स्त्री-वैद्य
अथवा उसकी एक सहायिका की आवश्यकता को दिन दिन
अनुभव कर रहा हूँ। मैं एक पृथक् अन्त स्त्री वार्ड
(Female indoor ward) स्थापित करने का प्रबन्ध
कर रहा हूँ - जिसमें प्रारम्भ के लिये ६ या ८ रोगि
शय्यायें हों। प्रशिक्षित आया (धात्री) इनकी निगरानी
करेगी और शय्या तय्यार करना - बस्ति और उत्तरबस्ति
अर्थात् योनिबस्ति (Enema and Douche) देना आदि
ऐसे कार्य करेगी। मेरी आपसे प्रार्थना है कि कृपया
अपने स्टाफ में किसी व्यक्ति को ढूँढने का अनुग्रह करें
जो यह काम कर सके। वह क्या वेतन लेगी? उसे
यहाँ सारे समय ठहरना होगा। मैं उसके पृथक्-
क्वार्टर के लिये प्रयत्न करूँगा। आपका पत्र पाकर मैं आज्ञा के
लिये अधिकारियों के पास पहुँचूँगा। आशा है आप मुझे इस
के लिये क्षमा कर अनुगृहीत करेंगी।

आपका स्नेही
डा० जी. आर. ताम्बे

ई

गुरुकुल कांगड़ी, ज़िला- सहारनपुर
संयुक्त प्रान्त, भारतवर्ष
४ सितम्बर १९३०

Captain E. K Wood I. A.
General Manager,
New Training College for Cripples
Stanmore, Middlesex, England.

प्रिय महोदय,

१७ जुलाई के "ब्रिटिश मैडिकल जर्नल" को पढ़ते हुए मैंने लंगड़े मनुष्यों की, स्टैनमोर (England) में स्थित शिक्षणसंस्था के बारे में पढ़ा। इस संस्था

के वर्णन के प्रसङ्ग में मुझे भी भारत में एक ऐसी ही संस्था को स्थापित करने का विचार हुआ - यदि यह सम्भव हो।

आप अपने वैयक्तिक अनुभव से जानते ही होंगे कि भारतवर्ष एक विस्तृत देश है - और वास्तव में ही इसमें लंगड़ों की संख्या बहुत अधिक होगी (होनी चाहिये)। इनमें से बहुत से गरीब और मध्यश्रेणी के पाये जायेंगे जिनके लिये कि उनके लंगड़े सम्बन्धी एक बड़ा भार और छाती का पत्थर होंगे। यह मनुष्यों की वह श्रेणी है, जिसे (ऐसी) सार्वजनिक संस्थाओं से प्राण-रक्षा की चिन्ता और ध्यान की आवश्यकता होती है।

आप की संस्था के उत्साह बढ़ाने वाले तथा हृदयग्राही वर्णन को पढ़ने से प्राप्त प्रेरणा के कारण मुझे भी इस बात का परीक्षण कर देखने का लोभ हो रहा है कि क्या इसी प्रकार की संस्था आपकी तरह, छोटे से परिमाण में भारत के किसी

प्रान्त में स्थापित हो सकती है या नहीं - उदाहरणार्थ युक्तप्रान्त (यू० पी०) में और विशेषत: उस संस्था के पड़ोस में, जिसमें कि मैं ऑनरेरी मैम्बर (अवैतनिक सदस्य) के रूप में काम कर रहा हूँ।

मैं गुरुकुल आयुर्वैदिक मैडिकल कॉलेज के रूप में "गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी" की सेवा कर रहा हूँ और इस कॉलेज से सम्बद्ध "श्रद्धानन्द सेवाश्रम ~~[illegible]~~ (Shraddhanand Mission Hospital)" का भी चीफ़ मैडिकल ऑफ़ीसर हूँ। उपरोक्त विश्व-विद्यालय के पास-पड़ोस में गांवों के शिक्षणविद्यालय (Training College) का आयोजन केवल आयोजन की दृष्टि से ही सुविधाजनक नहीं होगा - पर आर्थिक दृष्टि से भी हितकर होगा।

इस साहसिक (साहसपूर्ण) कृत्य में हाथ डालने से पूर्व मेरी समझ में यह अधिक अच्छा होगा कि पहले एक अच्छी विचारपूर्ण स्कीम बना

ली जावे, जिसमें कि इस विचार का पूर्ण विस्तार हो— विशेषतः प्रारम्भिक वय और बाद में होने वाले वय का। मेरी तुच्छ सम्मति में इससे बढ़कर बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य नहीं होगा कि हम एक बने-बनाये रास्ते (Trodden-path) पर चलें, जो कि अपने और औसवैस्टरी में स्थित, उर्वन क्रिपल्स ट्रेनिङ्ग-कॉलेज (लंगड़ों की शिक्षणसंस्था) के प्रेसीडेण्ट (प्रधान) मि० जे० राइडर जोन्स (Mr. J. Raidar Jones) ने आविष्कृत किया है।

अतएव मुझे आपकी अमूल्य सहायता और पथप्रदर्शन की बड़ी आवश्यकता है, इसके लिये आपसे प्रार्थना है कि कृपया अपने कॉलेज की भूमियोजना, जिसमें कि कॉलेज की स्थिति भी दिखलाई गई हो, भिन्न-भिन्न विभागों का प्रसार (Dimensions—लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई आदि), पाठ्य-क्रम, कलात्मक एवं सामान्य शिक्षण, शयनागृह,

क्रीड़ाक्षेत्र, दुकान (Workshop), पाकशाला और आपकी शिक्षण संस्था के प्रारम्भ से अब तक प्रत्येक वर्ष के वार्षिक वृत्तान्तों की कुछ प्रतियाँ तथा "ट्रेनी" ("Trainee") के कुछ अङ्क भेज कर अनुगृहीत करें। आपके प्रमाणपत्र (Diploma) की एक नमूना प्रति भी, जो कि आप अपने यहाँ से उत्तीर्ण होकर कॉलेज से बाहर जाने वाले विद्यार्थियों को देते होंगे, अत्यधिक लाभदायक होगी। वास्तव में सम्पूर्ण विवरण से, जो कि आप मुझे दे सकते हैं, मैं एक योजना (Scheme) बनाने में समर्थ हो सकूँगा - जो भारत की वर्तमान आर्थिक अवस्था के अनुकूल कार्यान्वित हो सके।

मैं वैयक्तिक रूप से, [redacted] आपकी

सहायता के लिये - जो कि आप कृपा करके मुझे देंगे, आपके प्रति हृदय से कृतज्ञ होऊँगा। यदि आप से सम्पूर्ण विवरण पाने के बाद, मैं योजना को प्रारम्भ करने में सफल हो सका, तो एक नये और अद्वितीय महत्वपूर्ण कार्य को प्रारम्भ करने का सारा सम्मान और श्रेय आप पर होगा।

आपका अमूल्य समय लेने के लिये क्षमा माँगता हुआ -

मैं हूँ

आपका अनुगृहीत

Dr. G R. Tambe,

M.A., B.Sc., L.M.& S.,

Principal, Gurukul Ayurvedic

Medical College,

Gurukul University Kangri,

India.

१

गुरुकुल कांगड़ी
जिला- सहारनपुर, यू०पी०
१७ सितम्बर १९२८

Messrs Malgham Brothers,
26 Old Custom House Road,
Fort Bombay.

प्रिय महोदय,

शायद आपको मालूम पड़ गया होगा कि मैं इस संस्था से, लगभग ६ मास बीते - गुरुकुल विश्वविद्यालय के आयुर्वैदिक महाविद्यालय के

अवैतनिक अध्यक्ष के रूप में सम्बद्ध होगया हूँ। यहाँ कॉलेज से सम्बद्ध "श्रद्धानन्द-सेवाभवन (Shraddhanand Mission Hospital)" नामक एक चिकित्सालय है, और मैं उसका इन्चार्ज हूँ। मेरा इरादा इन संस्थाओं के पुनरुद्धार तथा उन्हें अधिकतम उपयोगी बनाने का है - जहाँ तक धन यथासम्भव साथ देसके।

हमारे पास इस समय अन्दर के रोगियों के लिये २४ स्थान हैं - जो प्रायः सभी के सभी घिरे हुए हैं। गुरुकुल के अधिकारियों ने चिकित्सालय के, मेरे आने से पहले के कार्य में उन्नति के विचार से हमारे कार्य के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को कम करने के लिये कुछ और Blocks बनवाने का निश्चय किया है (की आज्ञा दी है)। उनके पास इस समय धन की बड़ी कमी है - परन्तु मैं आयुर्वेदिक महा-विद्यालय के अध्यक्ष के रूप में तथा चिकित्सा-लय ('श्रद्धानन्द सेवाभवन') के इन्चार्ज मेडिकल

औफ़ीसर के रूप में अवैतनिक तौर पर के तथा चिकित्सालय की उन्नति के लिये अपनी सारी व्यावसायिक कमाई अर्पण करके उनकी सहायता कर रहा हूँ।

हमारे पास इस समय विद्युत्प्रकाश (Electric Light) का इन्तज़ाम भी है और उसकी धारा A.C. 230 वोल्ट है। मैं इस विद्युत्-धारा से काम लेना चाहता हूँ - और निम्नलिखित कार्य यहाँ प्रचलित करना चाहता हूँ—:

1. X'Ray-Plant (इलकर)
2. Ultra-violet-Rays (रासायनिक किरणें)
3. Infra-red Rays (ताप की किरणें)
4. शल्यक्रियात्मक औ चिकित्सासम्बन्धी उपयोग के लिये डायाथर्मी-मशीन (Diathermy-Machine for the Operative and Theraputic use).
5. Ionisation तथा अन्य प्रयोजनों के लिये Pantostat
6. वैद्युतिक विसंक्रामक या कृमिसंहारक (Electric Steriliser), आदि-आदि.

मेरे पास आपका सूचीपत्र (Catalogue) है, पर मूल्यसूची (Price-List) नहीं। मैं आपका कृतज्ञ होऊँगा - यदि आप मेरे पास उसकी एक प्रति भेज सकें, जिससे कि मैं व्यय का अनुमान लगा कर धन के लिये अधिकारियों से अपील कर सकूँ।

इस संस्था को पूर्णतया, जनता के चन्दे से सहायता मिलती है - और मैं जनता से धन के लिये अपील कर रहा हूँ। यदि मैं यह जान सकूँ, कि मेरा उद्देश्य पूर्ण होने में कितना व्यय होगा, और कि मुझे किस समय सफलता मिल सकती है - तो मैं आपके विशाल हृदय का उदार कोना ढूँढूँगा और उससे यथाशक्ति इसके विचार और रियायत (Concession) के लिये प्रार्थना करूँगा।*

* यह पत्र हमें File में अधूरा ही प्राप्त हुआ है। हो सकता है कि इससे आगे का कागज गुम हो गया हो, या यह भी सम्भव है कि यह पत्र इतना ही हो। और इसमें सम्भावित [illegible]

गुरुकुल काङ्गड़ी

६ अगस्त, १९३०.

मेरे प्रिय सेठ लाधाभाई — नमस्ते.

आपका ४ अगस्त का कृपापत्र यथासमय प्राप्त हुआ। तदर्थ बहुत बहुत धन्यवाद।

मैं आपके पत्र में बन्द सौ रुपये के G.C. नोट (Government Currency Notes) की रसीद को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार करता हूँ। और गुरुकुल-चिकित्सालय (जो कि अब 'श्रद्धानन्द-मिशन-हॉस्पिटल' अथवा 'श्रद्धानन्द-सेवाश्रम' कहलाता है) की ओर से आपकी इस सहायता के लिये बड़ी कृतज्ञता से

धन्यवाद देता हूँ। यदि आप कृपा करके इस राशि में २०) और दे दें - तब आप एक रोगीशय्या के लिये १ वर्ष तक भोजन और दवाइयाँ दे सकेंगे और १२ मास तक उस रोगीशय्या में प्रविष्ट होने वाले एवं चिकित्सित रोगियों के लिये सहायता देने में हमारी सहायता करेंगे।

जैसा कि हिन्दी पैम्फलेट "अनुनन्द सेवाश्रम" के १४ पृष्ठ पर लिखा है, - रोगीशय्या के ऊपर एक फ्रेम में उस शय्या के दानी का नाम लगा दिया जाता है। मैं जानता हूँ कि आप नाम और ख्याति की परवाह नहीं करते हैं। - तथापि इस प्रकार की चीज अन्य उदार अभ्यागतों को आपका उदाहरण ग्रहण करने के लिये प्रेरित करेगी (उत्साहवर्धनी)।

हमें लगभग १५ शय्याओं के लिये सहायता प्राप्त हो चुकी है। परन्तु हमारे अन्दर के बीमारों (Indoor Patients) की संख्या लगातार बढ़ रही है। आपकी सदिच्छाओं से मैं इस विषय में कुछ ख्याति पा रहा हूँ। इस बढ़ती हुई कमी तथा फलतः अधिक चन्दे की आवश्यकता को पूर्ण कर सकने के लिये और भी वार्ड बनवाने का प्रयत्न कर रहे हैं। आपकी उदारता की आशा से मैं आपकी राशि में २०) और डाल रहा हूँ — और इसे आपसे प्राप्त प्रेमपूर्ण उपहार के रूप में चिकित्सालय के हिसाब में धन्यवाद-पूर्वक जमा करने के लिये [illegible] भेज रहा हूँ।

मैं बहुत से सर्जिकल ऑपरेशन- (Surgical Operations) भी करता हूँ - जिनमें आँख के ऑपरेशन भी सम्मिलित हैं।- और जैसा कि मैं जानता हूँ, मुझे ऐसे और भी बहुत से केस मिलने की आशाएँ।

यहाँ अच्छी वर्षा हो रही है और ऋतु बहुत ठण्डी होगई है। मैं वस्तुतः पूर्णतया कुशलपूर्वक हूँ। जीवनदासभाई और मथुरादासभाई सहित सब बच्चों को प्यार। तथा उनकी माता के प्रति सम्मान।

आपका स्नेही

गोपाल रामचन्द्र लाम्बे

१

गुरुकुल काङ्गड़ी

९ अगस्त, १९३७

मेरे प्रिय रतिलालभाई — नमस्ते.

उस बात को कुछ ही दिनों में ४ मास हो जायेंगे – जब कि आपने मुझे हरद्वार में बुला कर तथा मुझे अपने काम में व्यग्र ही पकड़ कर आश्चर्यान्वित एवं आनन्दित कर दिया था।

यह मेरे जीवन और जीविकासम्बन्धी गति में एक नये अध्याय का प्रारम्भ था। जब मैंने इस अवैतनिक और धर्मार्थ-कार्य का बीड़ा उठाया तो मुझे बड़ा सन्देह हो रहा था कि मैं किस

तरह इस नये वातावरण में निभा सकूँगा, जहाँ पर कि खान-पान, भाषा, रीति-रिवाज़ आदि सभी कुछ मेरे स्वदेश से भिन्न है।

स्वदेश? कौन सा है वह? क्या वह, जहाँ कि मेरा जन्म हुआ है - और मैं पला हूँ?

नहीं, मेरा इस विषय में एक विस्तृत दृष्टिकोण है। टामस पेनी (Thomas Payne) के शब्दों में — "सत्य ही मेरा धर्म है और संसार मेरा देश।", मैं यथाशक्ति इन क़दमों पर चलता जा रहा हूँ। फलतः, जैसे मैंने कराची को अपना स्वदेश समझना प्रारम्भ किया था और रतिलालभाई, सेठ छोटालालभाई और श्रीमती छोटालालभाई तथा उनके बच्चों के परिवार को अपना परिवार समझना शुरू किया — अथवा दूसरे शब्दों में, जैसे आप सबने कृपा करके मुझे अपने परिवार का एक अंग समझने का आदर प्रदान कर अपनी सहृदयता का परिचय दिया

है — वैसे ही मैंने अब यह समझना शुरू कर दिया है कि गुरुकुल भी मेरा है और मैं गुरुकुल वालों का हूँ। इस उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर मैं यहाँ काम कर रहा हूँ। और आपको यह जान कर हर्ष होगा कि यहाँ के अधिकारी महानुभाव मेरे अनुभवों और भावों का आदान-प्रदान करते हैं।

मेरा चिकित्सालय अधिकाधिक सर्वप्रिय होता जा रहा है। यहाँ मेरे पास बड़ी दूर-दूर से रोगी आते हैं, और मैं प्रतिदिन प्रत्येक प्रकार के २ या ३ बड़े शल्यकर्म (Major Operations) करता हूँ। यहाँ के आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्र एक नई 'स्पिरिट' ग्रहण कर रहे हैं — और इस प्रकार के भिन्न-भिन्न शल्यकर्मों को देखने के अपूर्व अवसर के कारण अत्यन्त प्रसन्न हैं।

आपके जाने के ठीक बाद सेठ नाथाभाई अपनी धर्मपत्नी और छोटे लड़के मथुरादास के साथ हरद्वार आये और कृपा करके मुझे मिलने गुरुकुल में पधारे।

उन्होंने मेरे कार्य को आपकी अपेक्षा अधिक उन्नत अवस्था में देखा। उन्होंने रोगियों को स्थान देने तथा, विशेषतः, उन्हें भोजनाच्छादनादि द्वारा सहारा देने की बड़ी दिक्कत को समझा।

आपको मेरे भेजे ट्रैक्ट ("अन्धानन्द-सेवाश्रम") से (१४ पृष्ठ) पता लगेगा कि एक रोगी-शय्या का १२ महीने तक के लिये व्यय १२०) है। सेठ छोटालालभाई जैसे आदमियों के लिये ऐसी छोटी राशि दान कर सकना कोई बड़ी बात नहीं। मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे अपनी छोटी प्रिय पुत्री रमा की प्रिय स्मृति में १२ रोगियों के लिये एक वार्ड बनवायें और रमा के नाम के पीछे, उस वार्ड का नाम रखवायें। उस का नाम वार्ड के साथ सम्बद्ध कर देने से, और जिसमें कि केवल ३०००) लगते हैं, यह हरद्वार जैसे प्रसिद्ध एवं पुनीत (प्रसिद्ध तीर्थ) स्थान और भागवती भागीरथी के पुनीत पुलिन पर, पीड़ित मानवजाति के असंख्य सदस्यों की सहायिका बनेगी।

आपकी, तथा आपके चाचा-चाची की सदिच्छाओं से मैं यहाँ प्रैक्टिस भी करता हूँ — और उसकी कमाई गुरुकुल-चिकित्सालय को देदेता हूँ।

महान् कुम्भ मेला आगामी वर्ष आ रहा है - और हम अपने इस आर्त मानवता के लिये सहायता के कार्य में काफी कमी अनुभव कर रहे हैं। हमने अपने को उस मौके के लिये तैयार करना शुरु कर दिया है। सेठ छोटालालभाई के उत्तम दान (Offices) के साथ-साथ आपकी अथवा अन्यों की कोई भी सहायता न केवल समयोपयोगी होगी - अपितु अत्यन्त अमूल्य भी होगी। मेरी ओर से आप कृपया उन्हें (सेठ छोटालालभाई को) मेरी अपील पढ़-सुनायें, और कहें कि आपके और आपकी धर्मपत्नी के मेरे (डा० जी. आर. साम्बे के) प्रति पहले किये गये असंख्य उपकारों में यह एक और की वृद्धि होगी।

कृपया हमारे मित्र सेठ मनुभाई को भी एक शय्या के लिये १२ मास का व्यय १२०)

उदारतापूर्वक दान करने के लिये प्रेरित कीजिए।

मैं वास्तव में बहुत आनन्दप्रसन्न हूँ। मेरा चाचा जी और उनकी धर्मपत्नी (चाची जी) के प्रति बहुत सम्मान करिये। मैं हमेशा आप सब और उन (?, सम्भवतः, 'आपकी धर्मपत्नी', सम्पादक) के; जो कि बिना किसी विशेषता के, सादगी और सचाई को अपने में छिपाये थी — मेरे साथ एक दुर्लभ परन्तु अमूल्य सम्बन्ध के बारे में विचार करता हूँ।

कृपया मेरा प्रत्येक बच्चे को प्यार दीजिए और श्रीमती रतिलालभाई (आपकी धर्मपत्नी) को स्नेह — यदि वे यहाँ आयी हों तो।

आपको यह जानकर हर्ष होगा कि मेरी भतीजी ने आनर्स के साथ बनारस हिन्दु युनिवर्सिटी का B. A. पास कर लिया है - और अब वह M. A. के लिये पढ़ रही है।

आपका अपना स्नेही -
गोपाल रामचन्द्र ताम्बे.

१०

सब सहृदय देशभक्तों और उदार दानियों की सेवा में

कृपया गुरुकुल-कांगड़ी-चिकित्सालय की धन से सहायता कीजिए और इसको जारी रखिये। बढ़ती हुई रोगियों की संख्या को घटाने के लिये चिकित्सालय को धन की अत्यधिक आवश्यकता होती है। एक रोगीशय्या बनवाने के लिये ६००) की आवश्यकता होती है- और इसको जारी रखने के लिये १५) मासिक की। निर्धन और रुग्ण मानवता तथा "आयुर्वैदिक महाविद्यालय" के विद्यार्थियों के लिये धन

और सहृदयता के रूप में जनता की सहायता की आवश्यकता होती है। अन्न, धन, कपड़े-लत्ते तथा छोटी से छोटी भेंट और धनराशि को बड़े धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया जायेगा। १०००) और इससे अधिक देने वाले दानी के नाम का पत्थर उसकी इच्छानुसार प्रसन्नता से प्रधानस्थान पर लगा दिया जायेगा। स्थान के अभाव से चिकित्सालय में प्रवेश कठिन होता जा रहा है, और [illegible] रोगियों को लौटाना निर्दय और अनुचित काम है।

डा. जी आर नामे

गुरुकुल कांगड़ी,
२ जुलाई, ९६ ई०.

अध्यक्ष, आयुर्वेद महाविद्यालय, और
Chief Medical Officer
I/c Gurukul Outdoor Hospital

११

गुरुकुल कांगड़ी
जिला- सहारनपुर, यू० पी०
भारतवर्ष

Messrs Watson and Sons,
(Electromedical) Limited
Sumic House, Parker Street,
Kingsway, W. C. 2
London

प्रिय महोदय,

२४ जुलाई १९३६ के "ब्रिटिश मेडिकल जर्नल" में प्रकाशित आपके विज्ञापन के संकेत के साथ मुझे यह पूछना है कि "Sumic" Junior, एक्स-रे-प्लान्ट

के सभी प्रकारों के लिये उपयोगी है या केवल अस्थि-भग्न-परीक्षा के लिये ही? मैं एक धर्मार्थ सेवाचिकित्सालय (सेवाश्रम) का इन्चार्ज हूँ- जिसमें लगभग ३५ रोगीशय्यायें हैं।

अस्थिभंग की चिकित्सा के अवसर थोड़े ही होते हैं- परन्तु रोगचिकित्सा एवं रोगपरीक्षा के लिये ऐक्स-रे-उपकरण की आवश्यकता प्रायः अनुभव की जाती है।

हमारे चिकित्सालय में २३० वोल्ट की A.C. धारा है। इसके सहारे से मैं ऐक्स-रे-कार्य Diathermy, Pantostat, और विशेषतः Ionization आदि का कार्य करना चाहता हूँ।

यदि Sunic Junior साधारण ऐक्स-रे-कार्य के लिये अधिक सम्भवतः उपयुक्त हो, तो कृपया मुझे उसका अथवा अन्य बड़े तथा अधिक चालू उपकरणों का वर्णनादि भेजकर अनुगृहीत करें- जिससे कि चिकित्सालय के वार्ड्स के अस्थिभग्नसम्बन्धी तथा सामान्य कार्य किये जा सकें; और साथ ही जो कि कम मूल्य वाला होने के साथ-साथ कार्य में भी पूर्ण प्रमाणित हो।

आपका अनुगृहीत
डा. जी. आर. साठे
M.A., B.Sc., L.M.S., R.S.H.(Hons.)
Principal Ayurvedic Medical College
and
Chief Medical Officer, "Shraddhanand Mission Hospital".

१२

प्रिय महोदय — नमस्ते.

हमें एक दूसरे से अलग हुए पूरे २० वर्ष हो गये - और उस अन्तिम मिलन को भी पूरे १५ वर्ष हो गये हैं, जब कि आपके भाई तथा मेरे प्रिय मित्र स्वर्गीय सेठ कल्याणमल जी की चिकित्सा के लिये आपने मुझे याद किया था। २० वर्ष के लम्बे वियोग-काल में तो सगे भाई की भी स्मृति नहीं रहती, तो यदि आपकी स्मृति में मेरा स्थान न रहा हो तो क्या आश्चर्य! किन्तु क्यों कि जब मैं इन्दौर

की सर्विस में था - तब हमारा पारस्परिक सम्बन्ध सच्चे और अच्छे मित्रों जैसा रहा था, इसीलिये समय और दूरी का इतना अन्तर होने पर भी हमारे उस पुराने सम्बन्ध को जागृत करने में मेरी एक ही पंक्ति काफ़ी होगी। मैं समझता हूँ कि आप उन सज्जनों में से नहीं हैं - कि जो समय और दूरी को हमारा मित्रभाव भुलाने देंगे।

इन बीस वर्षों में मैंने बहुत से स्थान बदले हैं। विविध शक्ति व सामर्थ्यानुसार विभिन्न सरकारों की सेवा की है। १९१७ से १९२० तक मैंने मध्यप्रान्त में सिविल-सर्जन की हैसियत से ब्रिटिश-सरकार की सेवा की। १९२० में महायुद्ध की समाप्ति पर युद्ध से लौटे हुए पुराने सिनियर सिविल अधिकारियों के लिये जगह ख़ाली करने को उस नियुक्ति से मैंने त्यागपत्र देदिया। १९२० से १९२४ तक मैंने नागपुर में वैयक्तिक शल्यचिकित्सक (सर्जन) के रूप में कार्य किया - और खूब अर्जन किया।

कच्छ स्टेट के आग्रह से मैं वहाँ चीफ मैडीकल ऑफीसर की हैसियत से चला गया। कच्छ में मैंने १० वर्ष सेवा की और फिर उस सेवा से विश्रान्ति ले ली।

मैं चाहता था कि मैं किसी धर्मार्थ चिकित्सालय व औषधालय को हाथ में ले कर अवैतनिक सेवा कर सकूँ और यथासम्भव वह किसी पवित्रस्थान या तीर्थ पर हो, किन्तु सब जानते हैं कि मात्र इच्छा या माँग करने से ही प्रत्येक मनोवाञ्छित वस्तु या अवसर नहीं मिल जाया करता। मनुष्य आखिर अपने भाग्य का अनुचर है, वह भाग्य उसे बना दे या बिगाड़ दे।

दो साल मैंने कराची में कार्य करते हुए, प्रतीक्षा में व्यतीत किये और तब मुझे यह वर्तमान स्वर्णिम अवसर मिला - जिस की मुझे कामना थी। भगवान की इच्छा से, अकस्मात ही गुरुकुल के अधिकारियों से मेरा सम्पर्क होगया - और कुछ दिन के सविस्तर पत्रव्यवहार के

बाद मैं आर्यसमाज द्वारा सुव्यवस्थित और सुचारु-रूप से सञ्चालित इस शिक्षा-संस्था में सम्मिलित हो गया।

गुरुकुल के अधिकारियों ने मुझे हरिद्वार के इस गुरुकुल विश्वविद्यालय में आयुर्वेद-महाविद्यालय का अध्यक्ष नियुक्त किया है। गत पहली एप्रिल को मैंने अवैतनिक अध्यक्ष के रूप में इस नियुक्ति को स्वीकार कर लिया है। और जाह्नवी के इस पवित्र तट पर मैं अपना कर्तव्य प्रेम और हितभावना लेकर रहा हूँ।

यह संस्था ३५ वर्ष हुए, अपने बीज-न्यास के दिन से ही शनैश. युवक बालकों का सात बरस की अवस्था से २१ वर्ष की अवस्था तक अनुकूल पोषण करती हुई, आत्मत्याग की भावना के साथ प्रगतिशील सुन्दर कार्य कर रही है। वे सभी बालक सरल आचार और उच्च विचार का जीवन बिताते हैं। अधिकतर उपाध्याय वेद, साहित्य और दर्शनों के प्रगाढ़ पण्डित हैं। शिक्षा का माध्यम आर्यभाषा (हिन्दी) है। मुझे भी आर्यभाषा में ही

आश्वासन देता होता है। यद्यपि प्रारम्भ में भाषा से अधिक परिचिति न होने से मुझे उसमें कुछ कठिनता अनुभव होती है। आशा है कुछ समय में ठीक अभ्यास हो जायगा।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि १० वर्ष पूर्व मुझे बम्बई की "पोपट प्रभुराम युनिवर्सिटी" की ओर से "प्राणाचार्य" की उपाधि दी गई थी। यह सबूत मैं केवल यह जताने के लिये दे रहा हूँ कि मैं बहुत वर्षों से आयुर्वेद का विद्यार्थी और प्रशंसक रहा हूँ। मैं यह खूब अच्छी तरह जानता हूँ, कि आप आयुर्वेद के एक सच्चे प्रशंसक, भक्त और संरक्षक हैं।

प्रिय सेठ साहिब! आप अपने लोकहितकारी दानों से अपना नाम पहले ही अमर कर चुके हैं, जिसके कारण आपको "दानशूर" की सच्ची प्रतिष्ठा मिली है। यह उन लोगों का प्रसाद है- जिन को आपने समय-समय पर सहायता की है, सहारा दिया है;

तथा शिक्षासंस्थाओं, विद्यार्थी-भवनों और भोजन-व्यवस्था के प्रबन्ध से जिन्हें बहुत बार आवारागर्दी से बचाया है। कुशल निरीक्षण रखने वाली ब्रिटिश सरकार योग्य व्यक्ति को उचित सम्मान देने में कभी नहीं चूकती। उसने आपको "नाइट (Knight)" की उपाधि से विभूषित किया है - जिसे वस्तुत आपने अपनी उदारशीलता से प्राप्त किया है। जो कुछ रॉकफ़ैलर, रॉथ्सचाइल्ड्स, और कार्नेगी अमेरिका के लिये हैं - वही आप भारत के लिये हैं। श्रीमान् रॉकफ़ैलर अभी ९२ वर्ष की अवस्था में विद्यमान हुए हैं। हम प्रार्थना करते हैं कि आप भारत की भलाई के लिये स्मरणीय शतवर्ष से भी अधिक जीवित रहें। मैं हृदय से आशा करता हूँ कि आप शीघ्र ही आदर्शरूप होकर इस प्रकार अपने उत्तराधिकारियों और पीढ़ी-दरपीढ़ी पीछे आने वाले वंशजों के लिये अपने नाम और यश को छोड़ कर जायेंगे। मेरे इस सब निर्देश का अभिप्राय आपकी

अतिप्रशंसा करना सर्वथा नहीं है। यह सब तो प्रत्यक्ष तथ्य है।

हमारा गुरुकुल - आयुर्वेद - महाविद्यालय अपने विकास की प्राथमिक अवस्था में है, और अभी शैशव में ही है। अभी हमारे पास कॉलेज के लिये कोई बिल्डिङ्ग नहीं है, नहीं विद्यार्थियों के लिये कोई पृथक् निवासभवन (Hostel), औषधनिर्माणभवन या प्रयोगशाला (Laboratory) और उपयुक्त चिकित्सालय है। हमारे पास केवल २० रोगियों के लिये ही स्थान है। एक प्रमुख तीर्थ-स्थान होने से हरिद्वार में भारत की चारों दिशाओं से बहुत यात्री आते हैं, उनमें से बहुत से निर्धन होते हैं। उनकी बीमारी में उनकी परवाह करने वाला कोई साथ नहीं होता। कभी-कभी सड़कों के किनारे वे लोग मरे पाये जाते हैं। यहाँ १०० से १५० तक रोगीशय्या (Beds) वाले एक अच्छे चिकित्सालय के लिये स्थान और आवश्यकता दोनों हैं। इस धनसंग्रह के लिये पूरा

प्रयत्न कर रहे हैं - और जो कुछ मिलता है उससे अपनी छोटी आवश्यकताएँ पूरी कर लेते हैं। कॉलेज (महाविद्यालय)-भवन) और उसके पृथक विशेष विभागों के लिये हमें कम से कम १ से १½ लाख रुपये तक की आवश्यकता है। प्रेममय अनुरोध और उत्साहमयी आशा से हम आपके पास पहुँचे हैं कि आप कृपा करके अपनी उदारता का हाथ हमारी ओर भी फैलाइये और इन्दौर तथा उसके चारों तरफ आपकी उदारता का पूरा आनन्द लेती हुई सैकड़ों संस्थाओं में एक और वृद्धि कीजिए।

आपके वैयक्तिक मित्र के नाते तथा गुरुकुल के भक्त और सेवक के रूप में मैं आप से विनय करता हूँ कि आप एक "भव्य विद्यालय" बनवा कर, जो कि आप ही के नाम से प्रसिद्ध होगा,- यहाँ गुरुकुल विश्वविद्यालय में अपनी उदारता का अमिट कीर्तिस्तम्भ स्थापित कीजिये।

यह ऐसी यादगार, जिसके लिये कि मैं गुरुकुल की ओर से विनय करता हूँ, भारत के चारों कोनों से आई हुई तीर्थ-यात्री आर्त जनता के लिये दैवीय सहायता-रूप होगी। यह उन लोगों के लिये और क्रमशः आने वाले गुरुकुल के आयुर्वेद-विद्यार्थियों की पीढ़ी के लिये एक नियामत (Blessing) होगी; और आयुर्वेद के लिये, जिसे कि यथार्थतः मैडिकल साइन्स का जनक कहा जाता है - एक सिद्ध आभूषण बनेगी।

मुझे डर है कि मेरा पत्र थकाने वाला नहीं - तो लम्बा अवश्य होगया है। मैं आपका मूल्यवान् समय लेने के लिये विनय-प्रार्थी हूँ।

अन्त में मैं सर्वशक्तिमान् प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वह — अपने पुत्रों की सच्ची आत्म भावना के साथ, प्रचुर साहस और योगशक्ति से पुनीत मातृभूमि की निःस्वार्थ

सेवा कर रही — इस अखिल भारतीय संस्था की सहायता करने के लिये आपको अन्तःप्रेरित करें।

भगवान आपको भारत के पुत्र-पुत्रियों के हित के लिये उन्नतिशील, आनन्दपूर्ण दीर्घ आयुष्य देवें।

मेरे प्रिय सेठ साहिब! आशा है आप स्वस्थ और सानन्द होंगे।

३२७

१३

12 Katrak Trust Block
Karachi (Sadar)
19^{th} Nov. 36.

To

The Governor
Gurukul University
Hardwar. U.P.

मान्य महोदय — नमस्ते.

मैं इस पत्र के साथ आज की तारीख़ के एक स्थानीय दैनिक पत्र "Sind Observer" का एक कटिंग भेज रहा हूँ। कटिंग में 'चिकित्सालय की नयी योजना' के विषय में है — जैसे कि आपके विचार हैं। इसके साथ ही मैं आपको विनयपूर्वक यह भी बतला देना

नोट — यह पत्र डा० [illegible] के आर्य [illegible] के [illegible] के [illegible] [illegible] था। इसके बाद ने [illegible]

चाहता हूँ कि मैं Bombay University का ६० वर्ष पूर्व का एक Medical Graduate हूँ। मैंने Honours के साथ M.A., B.Sc. L.M.&S. की डिग्रियाँ पाई हैं। मैं १८९८ में Medicine का Graduate बना। १८९९ से १९०२ तक मैं Grant Medical College, Bombay में नियुक्त पर रहा तथा साथ ही एक इसी बीच Bombay Municipality में प्लेग की ड्यूटी पर रहा।

१९०२ में मैं Indore State में State Surgeon (बड़ी पद — जो कि आजकल Chief Medical Officer कहें) के रूप में नियुक्त हुआ। वहाँ मैं १९१६ तक काम करता रहा और फिर मैंने उस पद से इस्तीफा दे दिया। तुरन्त ही मैं यूरोपीय महायुद्ध के लिये ब्रिटिश भारत में मध्यप्रान्त में Civil Surgeon के पद पर नियुक्त कर लिया गया। इस पद पर मैं १९२० तक रहा और युद्ध की समाप्ति के समय मैंने फिर उस स्थान से त्यागपत्र दे दिया — क्योंकि स्वामी पद्धे की स्वाधीनताओं में

सँभालना शुरू कर दिया था।

तब मैंने कानपुर में Private Practice प्रारम्भ की और १९२४ की समाप्ति तक यही करता रहा। उसके बाद बड़ौदा स्टेट ने मुझे Chief Medical Officer का पद प्रदान किया, जिसे मैंने स्वीकार कर लिया। और १० वर्ष तक मैं उस पद पर काम करता रहा- और तब उससे १९३४ में रिटायर्ड होगया। गत दो वर्षों में मैं करांची में प्राइवेट प्रैक्टिस करता रहा- जिसमें मैंने पैसा कमाने की अपेक्षा अपने को व्यस्त रखने का उद्देश्य अधिक रक्खा।

जब कि मैं इन्दौर स्टेट में सर्विस पर था - तब मुझे सार्वजनिक सेवाओं के लिये 2nd Class Kaiser-I-Hind Medal पारितोषिक रूप में दिया गया था।

यहाँ पर सब वर्णन करने से मेरा मतलब अपनी प्रशंसा करने का नहीं है - अपितु आपको अपनी अपने मन का स्वाभाविक झुकाव दिखाने का है।

थोड़े में यह मेरे विगत जीवन की कहानी है।

अब मैं अपने स्वरूप पर आता हूँ — अब मैं ८० वें साल में हूँ — और अपनी दृष्टि से मेरा स्वास्थ्य उत्तम है। अपने Official तथा व्यावसायिक (Professional) जीवन में मैंने शल्यतन्त्र (Surgery) का खूब अभ्यास किया है — मेरे किये हुए Major and Minor Operations 15 से 20000 तक से कम नहीं हो सकते। मैं चाकू को अब भी दृढ़ता से तथा विश्वासपूर्वक Handle कर सकता हूँ। मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं अपने जीवन के शेष दिनों को दीनों की सेवा के अर्पण कर दूँ और इस उद्देश्य से मैं अपनी सभी सरगर्मियों (Activities) को उस दिशा में ले जा रहा हूँ।

मैं कोई धनी आदमी नहीं हूँ — परन्तु मुझे इतना कुछ प्राप्त है कि मैं दूसरों पर भार बने बिना तथा दूसरों से सहायता के लिये मुखापेक्षी हुए बिना जीवन बिता सकूँ। अपने उपार्जित धन के अधिकांश भाग का व्यय मैंने अपने कुटुम्ब के सदस्यों को शिक्षि

करने तथा सर्विस में अपने कुछ अधीनस्थों की शिक्षा के लिये सहायता करने के रूप में काम किया है। एक भारतीय रियासत की सर्विस में मुझे इस काम के फलस्वरूप बहुत बड़ी राशि की हानि भी उठानी पड़ी है कि उनके चिकित्सालयों के संगठन तथा बढ़ाने में मेरा अधिकाधिक उन्माद-सा (Over-enthusiasm) रहा था। मैं आपको इस घटना के विस्तार से लादना (तंग करना) नहीं चाहता। तथ्य यह है कि मैंने ईमानदारी और उन्माद के खेल में 30000 के लगभग खोये हैं। मुझे अपने सीमित साधनों के कारण सादा जीवन बिताना पड़ा है। कराची आने तक मैं अपनी सीधी या नेक (Neat) कमाई को केवल इसी उद्देश्य से बचाता रहा हूँ कि मैं इसे अपने ढंग से किसी Charitable उद्देश्य को अर्पण कर दूँगा। मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं 'श्री रामकृष्ण मिशन' में सम्मिलित हो जाऊँ और उनकी किसी Dispensary या Hospital में उस के सदस्यों के साथ Medical Man के रूप में अवैतनिक

कार्य करूँ । "Sind Observer" में प्रकाशित आप की स्कीम से मुझे भी यह जानने का लोभ पैदा होता है कि यदि मैं आपके कुछ काम आ सकूँ तो क्या आप मुझे बुलायेंगे (वेतन का जिक्र करोगे? मुझे यह विश्वास दिलाने की आवश्यकता नहीं कि मैं किसी वेतन की आशा नहीं रखता ; परन्तु मुझे आवश्यकता है— रहने के लिये उचित किराये पर एक आरामदेह मकान की, एक उत्तम भृत्य की तथा उचित वेतन पर मेरी सेवा करने के लिये एक उत्तम रसोइये की । यदि वास्तव में ही चिकित्सालय की भूमि में क्वार्टर न हो - तो मैं चिकित्सालय के यथासम्भव अधिक समीप ही क्वार्टर लेना पसन्द करूँगा । मुझे कुछ विद्वानों (यथा संस्कृत के उत्तम विद्वान तथा पंडित) के सत्संग की आवश्यकता होगी— जिससे कि मैं अपने खाली समय में धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन कर सकूँ । ऐसी मण्डली (Company) की मुझे हरदुआर जैसे शान्त स्थान में एकान्त आशा करनी चाहिये । मुझे आशा है

कि हस्पताल में इसका प्रचार एवं अच्छा भी होगा — तो भी इस विषय में आपसे कुछ सलाह या विचार (Idea) पाने के लिये मैं आपका आभारी हूँगा।

"Sind Observer" में आपके लेख से मैंने यह बात निकाली है कि आपका विचार (लगभग 2000) प्रत्येक की लागत पर दस Wards बनाने का है — जिस में प्रत्येक में १० रोगियों के Accomodation का प्रबन्ध हो। यदि मुझे चिकित्सालय के साथ में लिये जाने का सौभाग्य प्राप्त हो — तो मैं अपने व्यय से एक वार्ड बनवाऊँ, जिसका स्वरूप वही उपरिवर्णित हो। वास्तव में, तथ्य तो यह है कि मैं आपको इस बात का विश्वास दिला सकता हूँ कि मेरा साथ में लिया जाना किसी अवस्था में भी आप पर किसी प्रकार का बोझ या बाधाजनक नहीं होगा — अपितु इसके विपरीत आपको यह एक सहायता ही होगी — कम से कम तब तक जब तक कि मैं काम करने में समर्थ हूँ।

अन्त में एक शब्द और — अपने
सम्पूर्ण जीवन में मैं कभी किसी का Subordinate (अधीनस्थ) नहीं रहा, सिवाय Government के — जिसकी मैंने सेवा की है। मैंने सदा स्वतन्त्र कार्य किया है और इस अवस्था का उपभोग मैं स्वतन्त्रता पूर्वक करना चाहता हूँ। मैं अपने ऊपर कोई बन्धन नहीं चाहता और अनुभव बतलायेगा कि कम से कम अपनी वर्तमान वय (Age) में मैं नहीं चाहता कि कोई मुझ पर शासन करे — हावी हो। अनुभव आपको बतलायेगा कि आपकी स्कीम में मेरा विलयन या सम्मिलन (Absorption) [redacted] इस आयोजना (Scheme) में ठोस सहायता सिद्ध होगा। मेरे लिये यह लाभ प्रत्येक दृष्टिकोण से बहुत महान् होगा।

आपके सामने रखे हुए इन विचारों के साथ-साथ मेरी आपसे प्रार्थना है कि कृपया इन पर अपने उदार (कृपापूर्ण) एवं गम्भीर विचार प्रकट कीजिए और मुझे शीघ्र ही उत्तर भेजकर अनुगृहीत कीजिए। और आपसे

फिर तो पर यह भी कहदूँ कि मेरे लेखप्रदान पर अखबारों में प्रकाशन में मैं कोई कीर्तिचिह्न नहीं समझता। यदि मेरे विचार और प्रस्ताव मौलिक बनाने चलते हैं — तो मेरी इच्छा है कि हमारे पत्रव्यवहार को सख्ती से प्राइवेट और Confidential रक्खा जावे। यदि आप मेरे लेखार्पण को अच्छा समझें तो मैं आगे आपसे प्रार्थना करूँगा कि Officially निमन्त्रण के रूप में इसका प्रारम्भ किया जावे — तथा मुझे इस काम में आवेदन (Apply) करने के लिये कहा जाय।

अन्त में, पढ़ने के लिये आपका अमूल्य समय लेने के लिये पुनर्तया क्षमा माँगता हूँ — उसे पढ़ने के लिये, जो कि निरर्थक (असार) के सिवाय कुछ नहीं होसकता, और फिर आपसे अपने पत्र का उत्तर भेजने की प्रार्थना करता हूँ।

मैं हूँ,
आपका अनुगृहीत
गोपाल आर ताम्बे.

मेरा पता:—
Dr: Gopal Ramchandra Tambe,
M.A., B.Sc., L.M.&S., K-I-H,
12 Katrak Trust Block,
Karachi (Sadar).

१४.

12. Katrak Trust Blocks
Karachi (Sadar)
8th Dec. 36.

प्रिय महोदय - नमस्ते.

मुझे आपका ४ दिसम्बर का उत्साहप्रद एवं कृपापूर्ण पत्र यथासमय प्राप्त हुआ है। मैं उस के लिये आपको धन्यवाद देता हूँ।

गुरुकुल-विश्वविद्यालय के चिकित्सालय के साथ सम्बद्ध होने में जिस रूप को उठाने जा रहा हूँ - वह मेरे जीवन का एक Turning Point है।

यह सुअवसर मुझे परमात्मा से प्रेषित है, बिल्कुल आकस्मिक है और अनजाने ही मिल गया है। Service से Retired होने के बाद से मैं हमेशा एक सुअवसर चाहता रहा हूँ और उसके लिये प्रार्थना करता रहा हूँ - जहाँ कि मैं दीन आर्त मानवजाति की मुफ्त सेवा कर सकूँ। मैं करुणामय भगवान का कृतज्ञ हूँ कि उसने मेरी प्रार्थना को सुना है। मुझे अब अनुभव होता है कि वह मेरी सहायता के लिये मेरी पीठ पर है और यह इसलिये कि उसने अनेक धर्मार्थ (Charitable) संस्थाओं में से मेरे लिये सेवार्थ चुना है — गुरुकुल-विश्वविद्यालय का चिकित्सालय, आयुर्वेद सहकार (Company) और हरद्वार जैसा पवित्र स्थान। अब मैं पण्डित जगन्नाथ की निम्नलिखित शब्दों में प्रार्थना के साथ माँ-गङ्गा के परम पुनीत एवं पवित्रताकारी जलों में दैनिक स्नान तथा शान्ति पर ध्यान दे सकता हूँ —:

"त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषु प्रेङ्खत: ।
त्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदृश: स्यान्मे शरीरव्यय: ॥"

इस सब कृपा के लिये मैं आपका हमेशा कृतज्ञ रहूँगा।

यहाँ से वास्तव में तथा उसके प्रस्थान कर देने से पहिले मुझे यह उचित प्रतीत होता है कि मैं एक बार इंग्लैंड हो आऊँ और स्वयं सब चीज़ों को देख आऊँ। इससे मुझे जलवायु, सामाजिक शिष्टाचार (Social Amenities) आदि सम्बन्धी सब सन्देहों को दूर करने में सहायता मिलेगी। आप के लेख ½ घं. बातचीत तथा वैयक्तिक रूप से सब चीज़ें देखने का मूल्य इससे कहीं अधिक है कि पत्रव्यवहार में इतने कागज़ों को खर्च किया जाय। किसी समय इंग्लैंड को देखलेने से समय और पैसे का भी सदुपयोग होगा। इसलिये मेरा विचार है कि बड़े दिनों (X'mas Days) Concessions से फायदा उठाया जाये और मैं इंग्लैंड के लिये २२ या २५ दिसम्बर को रवाना हो जाऊँ। इस वर्ष इस करांची में २६-२७-२८ दिसम्बर को अखिल भारतीय चिकित्सक सम्मेलन (All-India Medical Conference)

करने का आयोजन कर रहे हैं। मैं भी प्रबन्धकसमिति (Managing Committee) का एक सदस्य हूँ — अतः यदि मैं कुछ भी प्रदान करना चाहूँ तो बिना प्रेज़ीडेण्ट की आज्ञा के नहीं दिया जा सकता। खैर, मैं अपनी स्वीकृति का तार अवश्य दे दूँगा। मैं हरद्वार में २ दिन से अधिक नहीं ठहर सकूँगा — क्योंकि मेरा बिना Concession Ticket के समाप्त होने की तिथि से पूर्व ही अलमोड़ा को वापस आना था पर फिर वापसी लौटने का है।

इसके साथ ही, मैं आपका आभार मानूँगा यदि आप मुझे यह सूचित कर सकें कि आप हरद्वार में मेरे इस छोटे-से निवास के लिये सुविधापूर्वक किसी स्थान भोजन पा रहने तथा आवास (Lodging) का प्रबन्ध कर सकेंगे।

यदि आप गुरुकुल विश्वविद्यालय की वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित करें, जिसमें गुरुकुल के तथा विशेषतया चिकित्सालय के लोकोपकारी कार्यों का वर्णन हो — तो कृपया उसकी एक प्रति मुझे भी भेजने का अनुग्रह करें।

अन्त में मैं आपको फिर आपकी कृपाओं के लिये धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि इस सब प्राथमिक तथा नियमित पत्रव्यवहार से भविष्य में हमारी चिरस्थायी मित्रता तथा सहयोग में सहायता मिलेगी।

आपका स्नेही

गोपाल आर. लाम्बे

सेवा में —

The Governor & Vice Chancellor,

Gurukul University,

Hardwar.

१५

12 Katrak Trust Block
Karachi (Sadar)
17th January, 37

प्रिय पण्डित जी — नमस्ते

मेरे गुरुकुल देखने आने के बाद आपने जो पत्र मुझे लिखे थे — वे यथासमय मुझे प्राप्त होगये थे। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि आपकी अनुपस्थिति में आचार्य महोदय, डाक्टरों तथा अन्यों ने मुझे बिना किसी दिक्कत के, आराम से देखने का अनुग्रह किया। मुझे कुलपति प्रोफैसर

रामदेव जी से भी मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हम बड़ी देर तक लम्बी और मनोहारी (Pleasant) बातें करते रहे। मैंने बाद चिकित्सालय के दोनों विभाग (सामान्य, तथा विद्यार्थियों के लिये विशेष - ये दोनों विभाग) देखे - और यह सब कुछ देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। तो भी मेरी इच्छा थी कि मैं आपसे मिलने का आनन्द प्राप्त करता — और मुझे मिलना है और आगामी मार्च में मुझे यह सौभाग्य प्राप्त होगा।

कुलपति महोदय तथा श्री आचार्य जी ने, जिनके सम्बन्ध मैंने अपने हृदय को स्पष्ट कर दिया है, आपके साथ हमारे वार्तालाप के विषय में बातचीत की होगी, परन्तु तो भी संक्षेप से उसका वर्णन करना असंगत न होगा — उन दोनों महानुभावों ने अपनी इच्छा प्रकट की थी कि चिकित्सालय के चार्ज के अलावा गुरुकुल के आयुर्वैदिक मेडिकल कॉलेज में मैं कुछ पढ़ाने का काम भी करूँ। इस सप्ताह आये हुए आपके दोनों पत्र भी मुझे मिले

प्रभावित (विस्मित) करते हुए प्रतीत होते हैं। मेरे लिये पढ़ाने से बढ़कर हर्षप्रद और उत्तम कुछ नहीं। मैं पहले भी बहुत समय तक Grant Medical College, Bombay और Indore Medical School में यह काम कर चुका हूँ (पढ़ा चुका हूँ)। मैं यह कार्य पसन्द करता हूँ। मैं बड़ी खुशी से वह सब कुछ करूँगा — जो मुझे करने को कहा गया है और जो कि मैं आपकी व्यवस्था की इच्छा से विश्वासपूर्वक कर सकता हूँ जैसा कि मैंने आप को प्रथम पत्र में लिखा था — मैं अपने विभाग में अधीनस्थ अवस्था में नहीं रह सकता विशेषकर ७० वर्ष की अवस्था में, जब कि अपने सम्पूर्ण विगत जीवन में मैं कभी ऐसा नहीं रहा।

इस लिये मैं आप का कृतज्ञ होऊँगा — यदि आप मुझे अपने आयुर्वेदिक मेडिकल कालेज के अध्यक्ष

(Principal) तथा चिकित्सालय के इन्चार्ज नियुक्त करने के अपने फैसले के बारे में लिखेंगे। मुझे यह विश्वास दिलाने की तो आवश्यकता ही नहीं कि मैं पूर्ण सहयोग से सब-काम करूँगा।

पत्र समाप्त करने से पहले मुझे कहने दीजिए कि मैं आप लोगों के निमन्त्रण, सहयोग, स्वतंत्र-क्रियाशील-उदार एवं विनम्र व्यवहार से विशेष रूप से प्रसन्न हूँ — जो कि मैंने अपने भोरे से निवास के भीतर यहाँ सभी ओर पाई हैं।

मैं आपको धन्यवाद दूँगा - यदि आप मुझे शीघ्र ही उत्तर दें - जिससे मैं आपके मार्च में होने वाले वार्षिकोत्सव में यथासमय उपस्थित हो सकूँ।

अपने लोकोपकारी शुभकार्य के लिये आप परमात्मा से आशीर्वाद के भागी हों।

आपका स्नेही
गोपाल आर. शर्मा.

सेवा में —!

Pandit Satya Vrata Esqr.,
Governor & Vice-Chancellor,
Gurukul University Kangri,
Kankhal, Hardwar.

एक स्कीम *

(आयुर्वेद महाविद्यालय के विषय में डा॰ ताम्बे के कुछ विचार)

भाषा (हिन्दी) में ही शिक्षा का प्रश्न —

विदेशी शब्द शीघ्र ही स्वाभाविक बन जाते हैं (आदत में आजाते हैं — ज़बान पर चढ़ जाते हैं)। उनमें से सैकड़ों, सामान्य बातचीत के प्रयोग में आते हैं। यही बात हम English में भी पाते हैं। English में कई भारतीय शब्द हैं। मेरी समझ में यह अनिवार्य है। परन्तु मौलिक शब्दों के लिये मुश्किल से उच्चारण कर सकने योग्य ऐसे नये पारिभाषिक शब्द घड़ना, जो कि उस भाव को पूर्णतया या बिल्कुल ही नहीं प्रकट कर सकें — यह

* यह स्कीम 'आयुर्वेद महाविद्यालय' के विषय में है। सम्मानित डाक्टर ताम्बे महोदय ने इसे 'आयुर्वैदिक महाविद्यालय' की रिपोर्ट के रूप में "विश्वभारती" में पेश करने के लिये लेख लिखा था। इसके विषय के विचारों को अपने विचार प्रकट किये हैं। इसे यह आगे पीछे [illegible] [illegible]

मेरी समझमें केवल मात्र समय खोना है। परस्पर पत्र-
व्यवहार तथा संवादपत्रों के दिन-दिन बढ़ते हुए शीघ्र
साधनों के द्वारा भारत अपने समीप के तथा दूर के देशों
के साथ निरन्तर सम्बन्ध बढ़ाता जा रहा है — जो
मिश्रित भाषा के निर्माण का अनिवार्य परिणाम है।
संसार सर्वसाधारण के लिये एक सार्वलौकिक भाषा
बनाना चाहता है। प्रत्येक विषय की, एक
भारतीय प्रान्तिक भाषा (Vernacular) में शिक्षा
को अधिक पसन्द करके, हम अपने विद्यार्थियों की
उन्नति तथा महत्त्वाकांक्षा में रोड़ा अटका रहे होंगे।
भारतीय विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिये विदेशों
में जाना चाहिये, और यदि हम उसके English के ज्ञान
को सीमाबद्ध कर देते हैं — तो हम उसे लाभ की अपेक्षा
हानि अधिक पहुँचा रहे हैं। जो विदेशी भाषाओं में
Lectures को Attend करना होगा, विदेशी साहित्य

पढ़ना होगा, विदेश में रहना होगा, और विदेशियों के साथ सम्पर्क जोड़ना होगा। यह सब, तब तभी और केवल तभी हो सकता है जब कि उस विदेशी भाषा में शिक्षा मिली होगी तथा उसी विदेशी भाषा में अध्ययन की आदत प्राप्त होगी। यूरोपियन Sholars जब भारत में भारतीय दर्शन या योग का अध्ययन करने आते हैं तो वे English में ही शिक्षा पाने पर नहीं उटे रहते, अपितु भारतीय दर्शन का अध्ययन करने से पहले संस्कृत सीखते हैं। इस प्रकार मैंने संक्षेपसे इस उपर्युक्त विषय पर अपने विचार प्रकट कर दिये हैं।

अब मैं फिर गुरुकुल विश्वविद्यालय के विषय को लेता हूँ—: गुरुकुल विश्वविद्यालय अपने विद्यार्थियों को किसी विशेष व्यवसाय या रोजगार या पेशे के लिये तैयार नहीं करता- सिवाय मैडिकल के। मैडिकल विद्यार्थी को प्रधानतः आयुर्वेद के अध्ययन,

से सम्बन्ध जताते । इस प्रसंग के अभिव्यक्तियों की
बुद्धिमत्ता प्रशंसनीय है कि वे ऐसे बहुत रहस्यमयी नहीं
हैं जो सामान्य आयुर्वेद के अध्ययन करने वाले
विद्यार्थी की रुचि भी समझें । इसका मतलब यह नहीं
कि मैं आयुर्वेद को ढोंग (अधूरा) समझता हूँ -
और कि मेरी उसके प्रति आस्था नहीं है । अपितु
आयुर्वेद की अपेक्षा मेरा अधिक प्रेम- आदर और
प्रशंसा और किसी के प्रति नहीं है । - आयुर्वेद
को मैं सम्पूर्ण संसार के चिकित्साशास्त्रों का सरदार
या पिता समझता हूँ । यद्यपि मैं 40 वर्ष पूर्व का एक
Medical Graduate हूँ और डॉ॰ पदवि विश्वविद्यालय
से मंगा लेने का भय है, तो भी मुझे कहने दीजिए कि
बम्बई की एक पुरानी तथा उन्नती आयुर्वेदिक संस्था
(पोद्दार प्रभुराम आयुर्वेदिक इंस्टिट्यूशन) ने १० वर्ष
हुए मुझे अपनी सम्मानित उपाधि "प्राणाचार्य" से
विभूषित किया था । वैयक्तिक अभिरुचि के तौर पर

मैं आयुर्वैदिक साहित्य का अध्ययन करता हूँ — परन्तु मैंने पेशे के रूप में कभी इसका अभ्यास (Practice) नहीं किया।

गुरुकुल का अपना एक Medical College भी है — जिसमें Anatomy, Physiology, Chemistry, Botany, Pathology और Surgery आदि विषय वर्तमान ढंग पर पढ़ाये जाते हैं। Medicine (कायचिकित्सा) और इसके सब अंगों को शुद्ध आयुर्वैदिक ढंग से पढ़ाया जाता है।

कालेज से सम्बद्ध अपना एक चिकित्सालय भी है — जिसमें विद्यार्थियों को Clinical Medicine और Surgery की क्रियात्मक शिक्षा दी जाती है। चिकित्सालय के साथ के कार्यकर्ताओं (जो कि निस्सन्देह बहुत योग्य हैं) पर

बिना किसी निन्दा या आलोचना के उद्देश्य के, मुझे नम्रतापूर्वक यह कहना चाहिये कि Clinical Medicine की शिक्षा सन्तोषजनक एवं पर्याप्त नहीं है। यह चिकित्सालय एक छोटी सी संस्था है। इसमें प्रत्येक साधन की सुविधा का अभाव है + एक वर्तमान चिकित्सालय से जितने गुण होने की आशा की जाती है।

कॉलेज और चिकित्सालय दोनों को अपेक्षाकृत अधिक उत्तम स्थान एवं इमारत की आवश्यकता है। दोनों को मनुष्यों की अपर्याप्त सहायता प्राप्त है। एक आदमी पर बहुत सारी बातों का भार लाद देना — मुझे यह कहते हुए दुःख है कि यह ढंग बिल्कुल अनुचित एवं अमानवीय है — किसी और व्यक्ति के कार्यों के लिये सर्वथा दूर घातक है। उच्च-अधिकारी एवं छोटा — सारा स्टाफ अपर्याप्त है। शल्यकारों की संख्या आवश्यक रोगी-परीक्षात्मक शिक्षा (Clinical

Education) देनेवाले सर्जन और फिजिशियन दोनों दृष्टियों से अपर्याप्त हैं। Nursing का प्रबन्ध बिल्कुल नहीं है। यही बात भोजन-वस्त्रों तथा शय्याओं के लिये भी कही जा सकती है, यद्यपि इन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये उपयुक्त प्रयत्न किये जा रहे हैं।

एक मेडिकल कॉलेज को यथासाध्य सुसाधनसम्पन्न (well-equipped) होने के लिये एवं इस नाम का अधिकारी भी होने के लिये Clinical Material यथेष्ट रखना चाहिये। चिकित्सालय के C. M. O. (Chief Medical Officer) तथा आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज के अध्यक्ष (Principal) के रूप में मेरे केवल १ मास के छोटे से अनुभव ने मुझे यह निश्चय करा दिया है कि आसपास के ग्रामों से प्रचुर मात्रा में Clinical Material

प्राप्त किया जा सकता है। Indoor Accomodations को बढ़ाने, भोजन-वस्त्र-नर्सिंग और चिकित्सा के अपटूडेट साधनों [यथा X'Rays' Plant, Diathermy, Electricity, मातृगृह (Maternity-Home), और दन्त चिकित्सा विभाग (Department of Dentistry)] आदि की सब आवश्यक एवं प्रधान सुविधाओं के दे देने से हम उन Chemical Materials को (पर्याप्त मात्रा में) प्राप्त कर सकते हैं।

इस जिले में आँख की बीमारियों, खराब दाँतों, घेंघा (Goitre), और बुरी अवस्थाओं में (Worst Stages) में विषयभोगसम्बन्धी बीमारियों की भरमार है। मैं कुछ मोटी-मोटी विशेष बीमारियों का ही उल्लेख किया कर रहा हूँ। मैंने बच्चों का वर्णन तो बिल्कुल ही नहीं किया है — [illegible], श्लीपद (Elephantiasis), अण्डवृद्धि (Hydrocele), हर्निया,

Malaria से उत्पन्न बीमारियाँ - यथा Spleen cake - Enlarged liver (यकृद्वृद्धि), शोथ (Dropsies) - जो कि इस ज़िले में इतने अधिक मिलते हैं जितने बड़ी कठिनता से अन्यत्र नहीं पाये जाते हैं।

यहाँ तक मैंने इस ज़िले के स्थायी निवासियों में पाये जाने वाले रोगों का वर्णन किया है, परन्तु हरद्वार क्योंकि भारत के पवित्र-तम स्थानों में से है - अतः यहाँ आने वाले यात्रियों की बदौलत आबादी बहुत अधिक है। उनमें से बहुत से दीन दरिद्र जातियों के होते हैं। हर की पैड़ी के समीप गंगा के घाटों पर घूम जाइये - आपको जीवित जागृत, चलते-फिरते अस्थिपञ्जरों (Skeletons) की प्रचुर संख्या मिल जायगी। यह कल्पना करना कठिन है कि लोग वे अपने जीने का

प्रबन्ध करते हैं, और कौन उनकी सेवा करता है - वह छिने गए जाते हैं। टापू में सबसे अधिक आभारी (मथुरा महामारी) हैं बच्चे। यह कृमि सर्वव्यापक है (सब जगह पाया जाता है)। या किसी तीर्थ को अपने में छुपा रखे नहीं होगा। इसके विरुद्ध प्रतिशक्ति या क्षमताशक्ति (Immunity) नहीं है। धनी, सहज में ही विश्वास कर लेने वाले श्रद्धालु लोग तथा भोले लोग इसका विशेष शिकार (बलि) हैं। उनमें से बहुत से, जब एक बार इस महामारी से छुटकारा पा जाते हैं - तो अपने इष्टदेवता को धन्यवाद देते हैं॥ यहाँ इस पवित्रस्थान में वैद्यों और डाक्टरों की एक सेना है - जो कि च्यवनप्राश - शुद्ध शिलाजीत जैसी दवाइयों से व्यापार करती हैं और धनियों तथा मध्यम श्रेणी के लोगों की चिकित्सा कर-करके

उनकी चिंता वैद्य कर देती है (उन्हें दे कर देती हैं)।

मैं इस विनोद के लिये क्षमी हूँ। मेरा कहने का मतलब यह है कि किसी कॉलेज से संबद्ध चिकित्सालय में यदि कोई १५० शय्याओं के लिये भी प्रबन्ध करने का विचार करे तो यह काफी (प्रचुर) Clinical Material होगा।

इन्दौर में आजकल (एकमात्र प्रसिद्ध) सार्वजनिक चिकित्सालय केवलमात्र एक ही है और वह है Municipal Civil Hospital. यद्यपि वर्तमान में यह योग्य हाथों में है — तथापि इसमें काम एक आदमी के लिये बहुत अधिक है। Accomodation अपर्याप्त है। एक और चिकित्सालय की सख्त जरूरत है — जिस में कम से कम १०० शय्याओं के Accomodation का पूर्ण प्रबंध हो

ऐसी संस्था के लिये गुरुकुल से अच्छा और कोई स्थान नहीं कहा जा सकता। गुरुकुल खुले में स्थित है, इसके अपने विस्तृत मैदान हैं, [illegible] के लिये तथा रोग-परीक्षण सम्बन्धी क्रियात्मक शिक्षा (Clinical Practical Instructions) के लिये बहुत से विद्यार्थी हैं, और कि अधिक से अधिक प्रयोगों से लाभ उठा सकते हैं — अतः गुरुकुल को चाहिये कि वह इसके लिये अपने को आदर्श स्थान सिद्ध करे। अधिकारी लोग धन एकत्रित करने के लिये जी तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे यथा तथा जीवित चिकित्सालय की स्थापना की जा सके। परन्तु धन पर प्रभुत्व नहीं चलाया जा सकता। हमारी दृष्टि गुरुकुल के संरक्षकों, आयुर्वेद के पृष्ठपोषकों तथा पक्षपातियों, और आर्त मानवता के प्रति हमदर्दों की

ओर जाती है — वे ही अपने उदार दानों से गुरुकुल-आयुर्वेद - महाविद्यालय और चिकित्सालय की सहायता करें।

इससे पहले कि हम एक पृथक् महाविद्यालय बनाने लगें; हमें इसके अंगों - यथा Laboratories, रोगियों के लिये wards, विद्यार्थियों के लिये निवासा-स्थान, कर्मचारियों (Staff) के लिये क्वार्टर और प्रोफेसरों के लिये क्वार्टर तथा अध्यापन के कमरे आदि का पूर्ण प्रबन्ध एव आयोजन कर लेना चाहिये। ❀

(अपूर्ण)

❀ हमें यह रिपोर्ट अपूर्ण ही रूप में प्राप्त हुई और सब विचारशील महानुभावों से निवेदन है कि वे इन सब बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें।
— सम्पादक